अप्रैल २००० रू.10/-

चन्दामामा

चन्दामामा

सम्पुट-१०२ अप्रैल,२००० सञ्चिका-४

अन्तरङ्गम्

कहानियाँ

ज्ञानप्रद धारावाहिक

पौराणिक धारावाहिक

ऐतिहासिक विभूतियाँ

विशेष

Printed and Published by B. Viswanatha Reddi at B.N.K Press Pvt. Ltd., Chennai-600 026 on behalf of Chandamama India Limited, Chandamama Buildings, Vadapalani, Chennai-600 026. Editor: Viswam

इस माह की विशेष

ज्ञानी-मूढ़
(बेताल कथा)

शिव का विवाह

स्वर्ण-सिंहासन

अभिव्यक्त करो! पुरस्कार लो!

चन्दामामा

चन्दामामा

मार्च 2000

उत्तर

1. तिरुवल्लुवर और वासुकी

2.अ. धृतराष्ट्र ने गान्धार की राजकुमारी गान्धारी से विवाह किया।

ब. सावित्री ने शाल्व के राजकुमार सत्यवान से विवाह किया।

स. सहदेव की माँ माद्री मद्रदेश की राजकुमारी थी।

द. कर्ण को अंग देश का राजा बनाया गया।

इ. बभ्रुवाहन मनलुर की राजकुमारी चित्रांगदा से उत्पन्न अर्जुन का पुत्र था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि मनलुर मणिपुर का प्राचीन नाम था।

3.i. कथासरित सागर

ii. धारानगरी

iii. भास

iv. भर्तृहरि - जिसने शृंगार शतक, नीति शतक और वैराग्य शतक की रचना की।

v. उत्तरकाण्ड

ध्यान दें: 1. जनवरी प्रश्नावली की कोई प्रविष्टि न शुद्ध थी, और न पूर्ण।

2. कुछ प्रविष्टियों में उद्धरणों पर टिप्पणी नहीं दी गई थी।

3. प्रश्नावली में भाग लेनेवालों से अनुरोध है कि यदि वे चाहते हैं कि उनकी प्रविष्टियों पर पुरस्कार के लिए विचार किया जाये तो वे प्रश्नावली में दिये गये नियमों का पूर्णतः पालन करें।

सर्जनात्मक स्पर्द्धाएँ

पाठकों को आमन्त्रित करता है चन्दामामा

निम्नलिखित क्षेत्रों में कल्पना की उड़ान और खोज भरे सर्जनात्मक प्रतियोगों में भाग लेने के लिए :

छाया चित्र
अनुशीर्षक प्रतियोगिता

१. छायाचित्र अनुशीर्षक प्रतियोगिता पृष्ठ के लिए: उदीयमान छविकार एक युगल-चित्र भेज सकते हैं, जिसमें दोनों चित्र एक दूसरे से किसी प्रकार सम्बन्धित हों। दोनों चित्रों में सम्बन्ध के बारे में छविकार का अपना स्पष्टीकरण साथ में अवश्य होना चाहिए।

चयनित युगलचित्रों के लिए

पारितोषिक : ५०० रु.

प्रतियोगिता के लिए छाया चित्र किसी समय भेजे जा सकते हैं।

२. चन्दामामा द्वारा घोषित मुहावरा या लोकोक्ति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए पाठक १५०-१७५ शब्दों में एक उपाख्यान या चुटकुला, निजी अनुभव या कहानी (नई/पुरानी) भेज सकते हैं। कृपया याद रखें कि आप की रचना में कहानी का तत्व हो, किन्तु वह मूल कथा न हो जिससे यह लोकोक्ति या मुहावरा लिया गया है।

वर्तमान प्रतियोग के लिए

लोकोक्ति :

"एक बुराई से हजारों बुराइयाँ पैदा हो जातीहैं"

चयनित रचना पर पारितोषिक : ५०० रु.

सभी प्रस्तुतियाँ प्राप्त करने की

अन्तिम तिथि 30 अप्रैल, 2000

पुरस्कृत रचना चन्दामामा के मई २००० अंक में प्रकाशित होगी।

संस्थापक
चक्रपाणि, बी. नागि रेड्डी

मातृ भाषा का महत्व

यूनेस्को (संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन) ने घोषणा की है कि 21 फरवरी का दिन प्रति वर्ष मातृ भाषा दिवस के रूप में मनाया जायेगा। सन् 1952 में इसी दिन ढाका में बहुत से स्त्री-पुरुषों ने अपने प्राणों की आहुति दे दी थी और उसके निकटस्थ स्थानों पर अपने ऊपर उर्दू भाषा के बलात थोपे जाने का विरोध किया था। स्मरणीय है कि ढाका में तब पूर्वी बंगाल की राजधानी थी, जो उस समय पाकिस्तान का अंग था और उसे पूर्वी पाकिस्तान कहा जाता था। तत्कालीन प्रधान मंत्री नाजिमुद्दीन ने निश्चय किया कि केवल उर्दू देश की राज भाषा होगी और बंगला का सरकारी काम काज में कोई स्थान नहीं होगा।

शिक्षा शास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि किसी के मन के उचित विकास के लिए उसकी अपनी मातृ भाषा का अच्छा ज्ञान अनिवार्य है। हम अपने पाठकों तथा अभिभावकों से अनुरोध करते हैं कि वे अपनी मातृभाषा की उपेक्षा कभी न करें और अपने बच्चों की मातृभाषा की आवश्यक शिक्षा पर ध्यान दें।

यूनेस्को का कहना है कि यदि मातृ-भाषा की उपेक्षा की गई तो अगले दो दशकों में छः हजार भाषाएँ लुप्त हो जायेंगी। फलस्वरूप, हमारा विश्व विविधता से वंचित रह जायेगा और मनुष्य अधिक दरिद्र बन जायेगा। ऐसा कभी नहीं होना चाहिए।
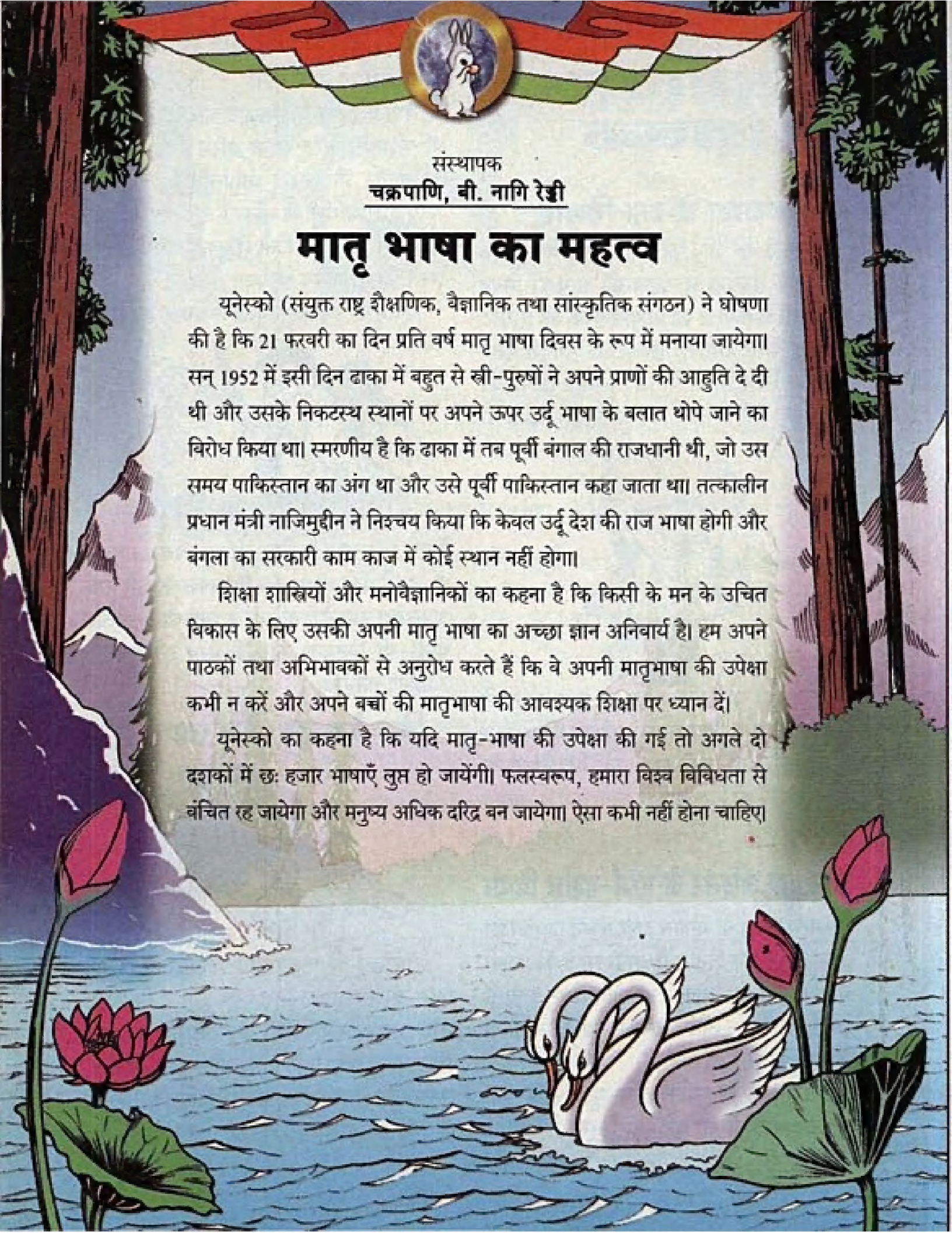
समाचार-झलक

कनाडा ने राह दिखाई

पिछली बार आप को बताया गया था कि एक सिगरेट के धूम्रपान से मनुष्य की आयु 11 मिनट घट जाती है। कनाडा का प्रस्ताव है कि वह सिगरेट पैकेट पर कैंसर प्रभावित फेफड़ों और रोगयुक्त मुखों के रंगीन चित्र छापने के लिए सिगरेट उत्पादकों को बाध्य करेगा ताकि नये बननेवाले धूम्रपानी

भयभीत हो जायें। अन्य देश भी ऐसा करनेवाले हैं। लेकिन ऐसी चित्रात्मक धमकियों की प्रतीक्षा क्यों करें? हम अभी से अपनी मित्रमंडली के धूम्रपानियों को निरुत्साहित करना क्यों न आरम्भ कर दें?

और एक अफसर ने मार्ग-दर्शन किया

मध्य प्रदेश के भोपाल शहर स्थित जयप्रकाश अस्पताल में एक दिन सवेरे-सवेरे सूरज की रोशनी चमकने लगी थी - डॉक्टरों पर, रोगियों पर, इमारतों पर, वाहनों पर - और परिसर में एकत्र गन्दगी के अम्बारों पर भी।

लेकिन ये दो व्यक्ति (एक पुरुष और एक महिला) कौन थे जो वहाँ झाड़ू लगा रहे थे? वे मेहतर जैसे तो नहीं लगते!

वे थे प्रशासक प्रशिक्षण अकादमी के निदेशक श्री पद्मवीर सिंह (एक वरिष्ठ आई.ए. एस. अधिकारी) और उनकी धर्मपत्नी।

प्रशिक्षणार्थियों ने उनका हाथ बँटाया और डॉक्टरों ने भी। बहुत दिनों से एकत्र गन्दगी का ढेर देखते-देखते गायब हो गया।

सचमुच! हम बहुत कुछ उपलब्ध कर सकते

हैं यदि ऐसे कामों के लिए, जो हम स्वयं कर सकते हों, दूसरों की प्रतीक्षा न करें। आवश्यकता है सिर्फ अपने देश और देशवासियों के लिए प्यार की तथा थोड़ी-सी विनम्रता की। श्री सिंह इन गुणों के उदाहरण बन गये।

बिग बैंग पुनः देख सकते हैं!

अमरीका की एक राष्ट्रीय प्रयोगशाला ने एक सूक्ष्म दर्पण (माइक्रो मिरर) का निर्माण किया है, जो, आशा की जाती है, अपनी अत्यन्त संवेदनशील प्रणाली के द्वारा ब्रह्माण्ड की रचना के समय बिग बैंग के विस्फोट से निर्मित प्रारम्भिक ग्रहों को अभिग्रहण कर लेगा।

पाठकों के मन की एक झाँकी

पिछले वर्ष के दिसम्बर माह में चन्दामामा के पुनः आरम्भ होने के बाद से आप के हाथ में यह पाँचवाँ अंक है। हमें पूरा विश्वास है कि पिछले चारों अंकों को आपने पसन्द किया होगा। आपने यह देखा होगा कि विगत 50 वर्षों से भी अधिक समय तक यह पत्रिका जिस विशिष्ट सुवास के लिए प्रसिद्ध थी, उसे इसने बनाये रखा है; पर साथ ही विषय वस्तु में काफी परिवर्तन तथा इसके विन्यास, रूपरेखा और चित्रण में पर्याप्त सुधार लाया गया है। इसके उत्तम कोटि के कागज के बारे में शायद हमें कहने की आवश्यकता नहीं है। हमने प्रत्येक अंक को पूर्ववर्ती अंक से बेहतर रंग देने की कोशिश की है। निस्सन्देह विगत सौ दिनों में पाठकों से प्राप्त पत्रों से सिद्ध हो गया है कि इन सुधारों पर उनकी निगाहें पड़ी हैं। लेकिन हम अपने चप्पुओं को विश्राम देना नहीं चाहते बल्कि यह अनुभव करते हैं कि, हमारे पाठक हमारी पत्रिका में और जो समाविष्ट देखना चाहते हैं और उनके बदले जिन स्तम्भों को वे सचमुच बन्द कर देना पसन्द करेंगे-उनके इन विचारों से निर्देशित होकर हम कुछ और सुधार लायें। आशा है, आप खुले दिल से अपना विचार प्रकट करेंगे।

हम चाहेंगे कि आप में से प्रत्येक निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें और निर्देशित संकेत-चिह्नों पर काट कर यथाशीघ्र हमारे पास भेज दें। उत्तर देने की प्रक्रिया हमने काफी सरल बनाई है। अधिकांश प्रश्नों के उत्तर में आप को उनके सम्मुख अंकित वर्गों में टिक (✓) का निशान लगाना है।

I. मेरे पास पत्रिका चन्दा द्वारा आती है ☐
मैं पत्रिका अखबार वाले से लेता / लेती हूँ ☐
मैं पत्रिका अखबार की दुकान से खरीदता/खरीदती हूँ ☐
मैं अपने मित्र / पुस्तकालय से लेकर पढ़ता / पढ़ती हूँ ☐

II. मैं नियमित रूप से / कभी-कभी इन्हें भी पढ़ता हूँ
☐ कॉमिक्स ☐ कहानी की पुस्तकें ☐ अन्य बाल पत्रिकाएँ..(उनका नाम बताएँ)

III. मैं पत्रिका निम्नलिखित भाषा में पढ़ता / पढ़ती हूँ:
अंग्रेजी/तेलुगु/तमिल/मलयालम/कन्नड़/हिन्दी/मराठी/गुजराती/बंगला/असमी/उड़िया/संस्कृत
(अपनी पत्रिका की भाषा को रेखांकित करें)

IV. विगत चार महीनों में मैंने पढ़े / पढ़ा:
☐ चार अंक ☐ तीन अंक
☐ दो अंक ☐ एक अंक

V. मैं निम्नलिखित स्तम्भों का मूल्यांकन इस प्रकार करूँगा / करूँगीः

☐ धारावाहिक कहानी ☐ भारत की गाथा ☐ भारतः तब और अब
☐ समाचार झलक ☐ नदियों की कहानी ☐ भारत की खोजः प्रश्नावली
☐ विक्रम-वेताल कथा ☐ विश्व-वातायन ☐ अन्य कहानियाँ
☐ पौराणिक आख्यान ☐ पहेलियाँ और स्पर्द्धाएँ

(अपनी पसन्द के क्रम से 1 से 11 तक वर्गों में अंक भरें)

VI. मैं चाहता हूँ / चाहती हूँ कि चन्दामामा में निम्नलिखित स्तम्भ हों :
(प्राथमिकता के क्रम में)

1.. 4..
2. .... 5..
3.. 6..

VII. मैं चाहता/चाहती हूँ कि आवरण-चित्र दर्शायें:

☐ साहसिक धारावाहिक का कथाक्रम ☐ पौराणिक कथा का एक दृश्य
☐ किसी अन्य कहानी का कोई कार्य-व्यापार

VIII. मैं समझता हूँ कि एक प्रति का मूल्य 10 रुपये बहुत ज्यादा है ☐: दे सकते हैं ☐: सस्ता कागज लगा कर मूल्य कम किया जाये ☐

IX. i) मैं ग्राहक हूँ ii) मैं ग्राहक बनना चाहता हूँ / चाहती हूँ

नाम.. उम्र..................
कक्षा..................विद्यालय ....
पता ....
....
..............................पिनकोड......................... राज्य....................

iii) मैं विद्यालय जाता हूँ / जाती हूँ ☐ अपनी साइकिल से ☐ स्कूल बस से
☐ सिटी बस से ☐ अपने माता / पिता के वाहन से
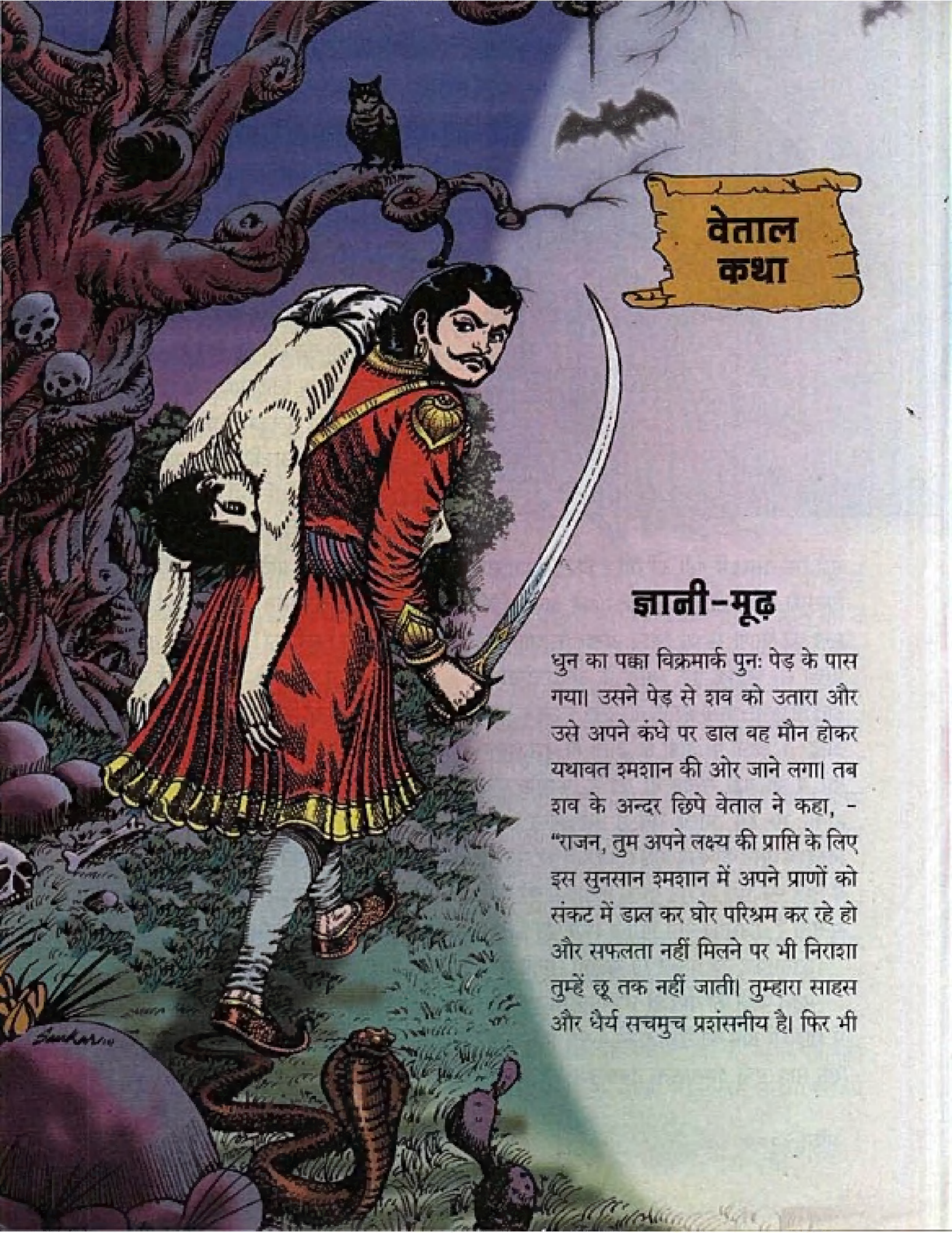
iv) मुझे जेबखर्च सौ रु. से कम मिलता है ☐ सौ रु. से अधिक मिलता है ☐

माता / पिता के हस्ताक्षर हस्ताक्षर

वेताल कथा

ज्ञानी-मूढ़

धुन का पक्का विक्रमार्क पुनः पेड़ के पास गया। उसने पेड़ से शव को उतारा और उसे अपने कंधे पर डाल वह मौन होकर यथावत श्मशान की ओर जाने लगा। तब शव के अन्दर छिपे वेताल ने कहा, - "राजन, तुम अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इस सुनसान श्मशान में अपने प्राणों को संकट में डाल कर घोर परिश्रम कर रहे हो और सफलता नहीं मिलने पर भी निराशा तुम्हें छू तक नहीं जाती। तुम्हारा साहस और धैर्य सचमुच प्रशंसनीय है। फिर भी

मुझे यह समझ में नहीं आ रहा है कि तुम यह सब किसकी प्रेरणा से कर रहे हो-अपने अन्दर छिपे मूर्ख की प्रेरणा से या अपने अन्दर के ज्ञानी की प्रेरणा से; क्योंकि एक व्यक्ति के अन्दर दोनों ही होते हैं। कभी-कभी व्यक्ति के अन्दर का मूढ़ उसके अन्दर के ज्ञानी पर हावी हो जाता है। मुझे तुम्हारे बारे में भी यही सन्देह हो रहा है, क्योंकि राजा होकर भी इस आधी रात में स्वच्छन्द होकर निरुद्देश्य घूमने का काम कोई ज्ञानी नहीं कर सकता। मैं तुम्हें एक ऐसे ही मूढ़ युवक कलाकार की कथा सुनाता हूँ, जिसका नाम विराज शर्मा था।

इतना कह कर बेताल यों कहानी सुनाने लगाः

बहुत पहले की बात है। चक्रवाक नामक राज्य में शशिधर नाम का राजा राज्य करता था। उसकी एक मात्र पुत्री शम्पालता देवकन्या-सी अनुपम सुन्दरी थी। उस समय की परम्परा के अनुसार राज परिवार की स्त्रियों को परपुरुष को देखना मना था। इसलिए चक्रवाक की प्रजा को यह मालूम नहीं था कि शम्पालता कितनी सुन्दर है।

एक दिन शम्पालता ने अपने पिता से अपनी एक प्रतिमा बनवाने की इच्छा प्रकट की। अपनी एकलौती बेटी की इच्छा की पूर्ति के लिए राजा शशिधर ने राज्य भर के निपुण शिल्पियों को आमंत्रित किया। राज्य के बड़े-बड़े कलाकार अपना भाग्य आजमाने के लिए आये। वे जानते थे कि परम्परा के अनुसार राजकुमारी को देख नहीं सकते और उसे देखे बिना उसकी प्रतिमा बनाना सम्भव नहीं है। फिर भी उन शिल्पियों ने अपनी कल्पना से राजकुमारी की एक से एक बढ़ कर सुन्दर प्रतिमाएँ बनाईं। किन्तु एक भी प्रतिमा राजकुमारी के अनुपम सौन्दर्य को प्रतिबिम्बित नहीं कर सकी। इसलिए राजकुमारी को किसी का शिल्प पसन्द नहीं आया।

तब राजा ने राज्य के और अच्छे कलाकारों को आकर्षित करने के लिए यह घोषणा कराई कि जो भी शिल्पी राजकुमारी की अद्‌भुत प्रतिमा बनायेगा उसे राज्य का प्रधान शिल्पी बना दिया जायेगा। उस समय देश के सरहदी प्रान्त वज्रकूट से विराज शर्मा अपने माता-पिता को देखने के लिए स्वदेश लौट रहा था। वह वज्रकूट में शिल्पकला की शिक्षा प्राप्त कर रहा था। उसे इस घोषणा से बहुत आश्चर्य हुआ।

विराज शर्मा का पिता प्रकम्पन शर्मा राजस्थानी शैली का एक सुप्रसिद्ध शिल्पकार था। वृद्धावस्था के कारण उसने अब कार्य करना बन्द कर दिया

था। घर पहुँचते ही विराज शर्मा ने अपने पिता से राजा की घोषणा की चर्चा की और पूछा कि राजकुमारी को बिना देखे हू बहू वैसा ही शिल्प बनाना कैसे संभव हो सकता है।

बेटे की बात पर वृद्ध शिल्पी ने हँसते हुए कहा, - "तुम्हारा प्रश्न स्वाभाविक है। इस बात को लेकर सभी शिल्पी चिन्तित हैं। यह कार्य अवश्य असंभव है किन्तु योग और मंत्र-तंत्र से प्राप्त अलौकिक शक्तियों से इसे संभव बनाया जा सकता है। यदि कलाकार योग और ध्यान की क्रिया में प्रवीण हो तो मन को केन्द्रित करके नमूने का वास्तविक स्वरूप अपनी दृष्टि में ला सकता है। प्राचीन काल के कलाकारों ने योग द्वारा यह दिव्य दृष्टि प्राप्त की थी। इसीलिए उन्होंने मन्दिरों की दीवारों में अवतारों और देवताओं की मूर्तियाँ अंकित कर दीं।

यह कार्य मंत्र-तंत्र जानने वालों की सहायता से भी किया जा सकता है। उनमें अलौकिक शक्तियाँ होती हैं, जो हर असंभव को संभव बना सकती हैं। हमारे राज्य की आग्नेय दिशा के अरण्य प्रदेश में हर महीने की अमावास्या को यक्ष जाति के लोग एकत्र होते हैं। ये देवगणों में सबसे अधिक मंत्र-तंत्र कोविद हैं। उनकी सहायता प्राप्त होने पर यह संभव हो सकता है। परसों ही अमावास्या आनेवाली है।"

"लेकिन उनकी सहायता प्राप्त करना कैसे संभव होगा? मैं राजकुमारी का शिल्प बना कर प्रधान शिल्पी बनना चाहता हूँ।" चिन्तित स्वर में विराज शर्मा ने कहा।

"फिर विलम्ब क्यों करते हो? साहस करो, क्यों
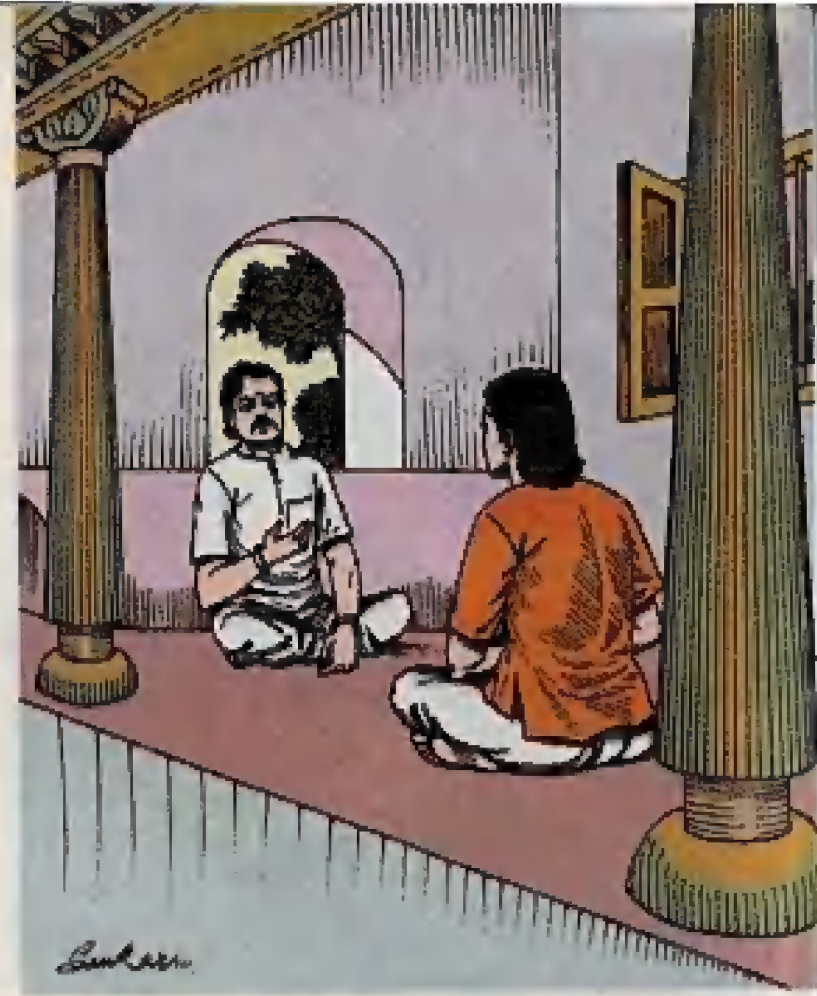
कि साहस ही सफलता की कुंजी है। मैं भी राज्य का प्रधान शिल्पी बनना चाहता था, किन्तु बन न सका। यदि तुम बन सके तो सबसे अधिक आनन्द और सन्तोष मुझे मिलेगा। मैं बचपन से सुनता आ रहा हूँ कि कुछ लोगों ने यक्षों की कृपा और सहायता से अपनी असंभव महत्वाकांक्षाओं को भी पूरा करने में सफलता प्राप्त की है। तुम भी अपने भाग्य को आजमा सकते हो।" पिता ने पुत्र को प्रोत्साहित किया।

अपने पिता का अशीर्वाद लेकर वह दूसरे दिन सवेरे ही घोड़े पर सवार होकर चल पड़ा। ठीक अमावास्या के दिन सूर्यास्त होते-होते वह यक्षों के प्रदेश में पहुँच गया।

विराज ने वहाँ एक सरोवर के किनारे एक वृक्ष के नीचे बैठ कर अपने घर से लाई रोटियाँ खा लीं

और सरोवर का पानी पी कर विश्राम करने लगा। मार्ग की थकावट के कारण उसकी आँखें लग गईं।

थोड़ी देर में दो सुन्दर स्त्रियों की खिलखिलाहट सुन कर उसकी नींद खुल गई। उन स्त्रियों के वेश-विन्यास और अलौकिक पुष्पों के उनके आभूषणों से उसे विश्वास हो गया कि ये हो न हो यक्ष-कन्याएँ हैं। इनका अलौकिक सौन्दर्य मानवी नहीं हो सकता।

वह यक्ष-कन्याओं से बात करने में संकोच कर रहा था। तभी एक कन्या उसके पास आकर बोली, -"मानव युवक, इस घनघोर अंधेरी रात में यक्षों के अरण्य प्रदेश में आने का तुमने कैसे साहस किया?"

बिराज शर्मा ने सविनय प्रणाम करते हुए उन्हें अपनी कहानी सुना दी और अपने कार्य में उनसे सहायता की याचना की।

उस यक्ष-कन्या ने दूसरी यक्षिणी से संकेत से बात करके कहा, - "बिना देखे किसी मनुष्य की प्रतिमा बनाना सचमुच असंभव कार्य है। किन्तु हम दोनों यक्ष-कन्याएँ तुम्हारे इस असंभव कार्य को एक शर्त पर संभव बना सकती हैं। मेरा नाम चपला है और मेरी सहेली का नाम चंचला है। हम दोनों इस अरण्य की शोभा बढ़ाने के लिए अपनी-अपनी प्रतिमा बनवाना चाहती हैं। यदि तुम हम दोनों की मूर्तियाँ गढ़ सको तो तुम्हारे लिए तुम्हारी राजकुमारी को हम यहीं ला देंगी।"

बिराज शर्मा ने तुरन्त उनकी शर्त मंजूर कर ली।

चपला ने तब चुटकी बजा कर कुछ मंत्रोच्चार किया और चंचला को स्पर्श करते हुए कहा, - "लो यह है तुम्हारी राजकुमारी शंपालता। अब तुम इसे देख कर इसकी प्रतिमा बना लो।"

दूसरे ही क्षण चंचला के स्थान पर राजकुमारी शंपालता खड़ी थी। विराजशर्मा यह देख कर स्तंभित रह गया।

"लेकिन चंचला कहाँ है?" आश्चर्य चकित बिराज शर्मा ने कहा।

"मैं ही चंचला हूँ, लेकिन राजकुमारी के रूप में। क्या यह मेरे कंठस्वर से पता नहीं चलता?" राजकुमारी के रूप में चंचला ने कहा।

"वाह! अद्‌भुत चमत्कार! तुम यक्षिणियों के लिए कुछ भी असंभव नहीं। लेकिन अब राजकुमारी की प्रतिमा तराशने के लिए मुझे श्वेत संगमरमर की आवश्यकता है और उससे भी अधिक

आवश्यक है प्रकाश, जिसमें मैं राजकुमारी और संगमरमर के शिल्प को देख सकूं।

चपला ने फिर चुटकी बजा कर कुछ मंत्रोच्चार किया और दूसरे ही क्षण संगमरमर का पत्थर आ गया और राजकुमारी पर चाँदनी जैसा प्रकाश फैल गया। विराज शर्मा ने तुरन्त अपने साथ लाये संगतराशी के उपकरणों से पत्थर पर शिल्प का कार्य प्रारम्भ कर दिया।

उसके कार्य की धीमी गति को देख कर चंचला ने कहा, -"तुम्हारे काम की गति धीमी है। इसलिए तुम्हारे उपकरणों में सौ गुणा अधिक वेग भर रही हूँ। काम यथाशीघ्र पूरा करो।"

विराज शर्मा ने तल्लीनता से काम करके एक घंटे में राजकुमारी की प्रतिमा तैयार कर दी। फिर दोनों यक्षिणियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हुआ वह बोला,- "आप लोगों की कृपा से ही यह असंभव कार्य पूरा हो सका। इसके लिए आप को कोटि-कोटि धन्यवाद! अब यदि एक और कृपा करके इस कलाकृति को मेरे घर पहुँचा दें तो अगली अमावास्या को आकर आप दोनों की मूर्तियाँ बना दूगाँ।"

"आँखें बंद करो। यह भी हो जायेगा।" दोनों यक्षिणियों ने कहा।

उसने जैसे ही आँखें बन्द कीं कि पलक मारते ही राजकुमारी की प्रतिमा उसके घर के आंगन में पहुँच गई। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने आँखें खोलते ही देखा कि वह प्रतिमा के साथ स्वयं भी अपने घर के आंगन में खड़ा है। तब तक सूर्योदय हो गया था और सूर्य की सुनहरी

किरणों में राजकुमारी का अनुपम सौन्दर्य मानों जीवन्त हो उठा था। विराज ने सारा वृतान्त अपने पिता को सुना कर कहा, -"पिताश्री, यह सब आप के आशीर्वाद तथा प्रोत्साहन से ही संभव हो सका है।"

विराज शर्मा ने तत्पश्चात राजा को यह सन्देश भेजवाया कि राजकुमारी की प्रतिमा तैयार है। इसे राजमहल में मंगवाने का प्रबन्ध करें।

राजा ने जब प्रतिमा को राजमहल में मंगवा कर सपरिवार देखा तो वह प्रतिमा की अद्वितीय सुन्दरता, परिपूर्णता और उच्च कोटि की शिल्पकारिता देख कर अवाक् रह गया। उसे लगा कि वह प्रतिमा नहीं बल्कि उसकी बेटी शंपालता स्वयं जीवन्त रूप में खड़ी है। शंपालता उसे देख कर आनन्द से आह भरती हुई बोली, -"लगता है
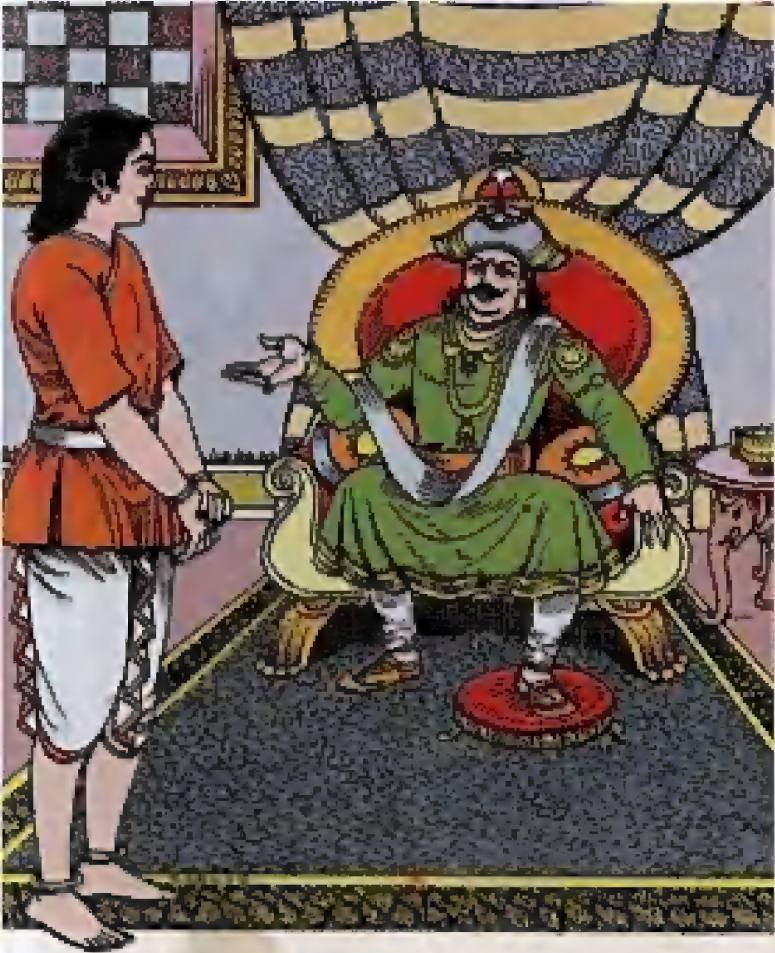
मैं दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देख रही हूँ। यह किसी मानवीय हाथ की कलाकृति नहीं, बल्कि किसी जादुई अंगुलियों का चमत्कार है।"

राजा शशिधर ने अपने बचन के अनुसार किसी शुभ मुहूर्त्त पर विराज शर्मा को राज्य का प्रधान शिल्पी बनाने की घोषणा कर दी और विराज शर्मा को बुला कर उसकी कला की प्रशंसा करते हुए कहा, -"तुम्हारा शिल्प बेजोड़ है। तुम्हारे समान महान शिल्पी शायद ही कोई दूसरा संसार भर में हो। हमारी भाभी की पुत्री मंजुला शामंतक नगर से आज ही मेरी बेटी की प्रतिमा देखने आई है। उसने तुम्हारी कलाकृति की प्रशंसा करते हुए कहा कि इसका शिल्पकार विश्वकर्मा से कम नहीं है। उसकी तीव्र इच्छा है कि तुम उसकी भी एक ऐसी ही प्रतिमा बना दो। उसकी प्रतिमा पूरी होने के दो दिनों के बाद राज्य का प्रधान शिल्पी नियुक्त कर दिये जाओगे।

राजा की यह बात सुन कर विराज शर्मा हतोत्साहित और निस्तेज हो गया और थोड़ी देर तक सोचने के बाद बोला, -"आप की आज्ञा शिरोधार्य है, महाराज। अब मुझे जाने की अनुमति दीजिए।"

घर लौटकर उसने अपने पिता को सारा वृतान्त बताते हुए कहा, -"कल सबेरे ही हम दोनों वज्रकूट स्थित अपने गुरु की शिल्पशाला चले जायेंगे। वह हमारे राज्य की सीमा से बाहर है और वहाँ का राजा महाराज शशिधर से अधिक समर्थ और ज्ञानी है।"

वेताल ने यह कहानी सुना कर कहा, -"राजन, विराज शर्मा अपनी कला का मर्मज्ञ है, ज्ञानी है, फिर भी उसके अन्दर एक मूढ़ और बुद्धिहीन व्यक्ति भी है, जिसके प्रभाव में आकर वह हाथ में आये सफलता के अवसर को खो देता है।

"एक समय वह राज्य का प्रधान शिल्पी बनने का सपना देखता था। उसकी पूर्ति के लिए कठिन से कठिन संकट झेलने को तैयार था। और अब, जब वह प्रधान शिल्पी बनने ही वाला था कि उसकी सारी आकांक्षा, सारा उत्साह नष्ट हो गया। उन्होंने बिना विचारे सामने आये स्वर्णिम अवसर को जाने दिया।

"जिस प्रकार उसने यक्षिणियों की सहायता से राजकुमारी की प्रतिमा बनाई थी, उसी प्रकार वह मंजुला की प्रतिमा भी बना सकता था। यक्षिणियों की प्रतिमा बना देने के बाद यह काम कठिन नहीं होता। उसके बाद वह राज्य का प्रधान शिल्पी बन

जो सम्पत्ति परोपकार में खर्च नहीं होती, वह उस विद्युत के समान है जिसकी चमक एक क्षण के लिए आँख को पीड़ित कर विलीन हो जाती है।

- कथा सरित्सागर

कर दुर्लभ राजकीय प्रतिष्ठा और अपार संपदा का स्वामी हो सकता था। लेकिन यह सब ठुकरा कर देश छोड़ अन्य राज्य में जाने का उसका निर्णय क्या अविवेक पूर्ण नहीं है? मेरे विचार से वह ज्ञानी होते हुए भी मूढ़ है, क्योंकि उसने तुम्हारी ही तरह साहस और परिश्रम द्वारा किये गये फल की चिंता नहीं की।

"मेरे इस सन्देह का, जानते हुए भी, समाधान नहीं करोगे तो तुम्हारे सिर के टुकड़े हो जायेंगे।"

राजा विक्रमार्क ने अपना मौन भंग करते हुए कहा, -"इस संसार में कितनी ही उचित-अनुचित परम्पराएं प्रचलित हैं। राजा शशिधर के वंश की यह परम्परा भी, कि शिल्पी राजकुमारी को देखे बिना उसकी प्रतिमा बना दे, अनुचित, मूर्खतापूर्ण और असंभव है। फिर भी विराज शर्मा ने अपने पिता की सलाह पर यक्षिणियों से सहायता लेकर इस असंभव को भी संभव बना दिया। लेकिन राजा ने इस असाध्य कार्य को साध्य बनाने का रहस्य जानने की कोशिश नहीं की-यह उसकी जड़ता और मूर्खता का परिचायक है। अभी विराज शर्मा प्रधान शिल्पी बना भी नहीं था कि उसे मंजुला की वैसी ही प्रतिमा बनाने का राजा द्वारा आदेश दिया गया। प्रधान शिल्पी बन जाने के बाद पता नहीं उसे और कितनी ही स्त्रियों की बिना उन्हें देखे प्रतिमा बनानी पड़ती। यक्षिणियों से बार-बार सहायता लेना संभव नहीं था और उनकी सहायता के बिना यह कार्य असम्भव था। इसलिए बहुत सोच विचार के बाद वह इस निर्णय पर पहुँचा कि मूर्ख और अविवेकी राजा के अधीन प्रधान शिल्पी बनने की अपेक्षा अपने कला मर्मज्ञ गुरु के साथ रह कर कला की सेवा करना अधिक सार्थक और संतोषप्रद होगा। और इसी में उसकी और उसके पिता की भलाई है। इसलिए विराज शर्मा का यह निर्णय सही, विवेकपूर्ण और सुख-संतोषप्रद है, मूर्खतापूर्ण नहीं।"

राजा के मौन भंग होते ही बेताल शवसहित अदृश्य हो गया और पेड़ पर जा बैठा।

(पट्टाभि की रचना के आधार पर)

इस माह जिनकी जयन्ती है:

तीन यशस्वी गुरु
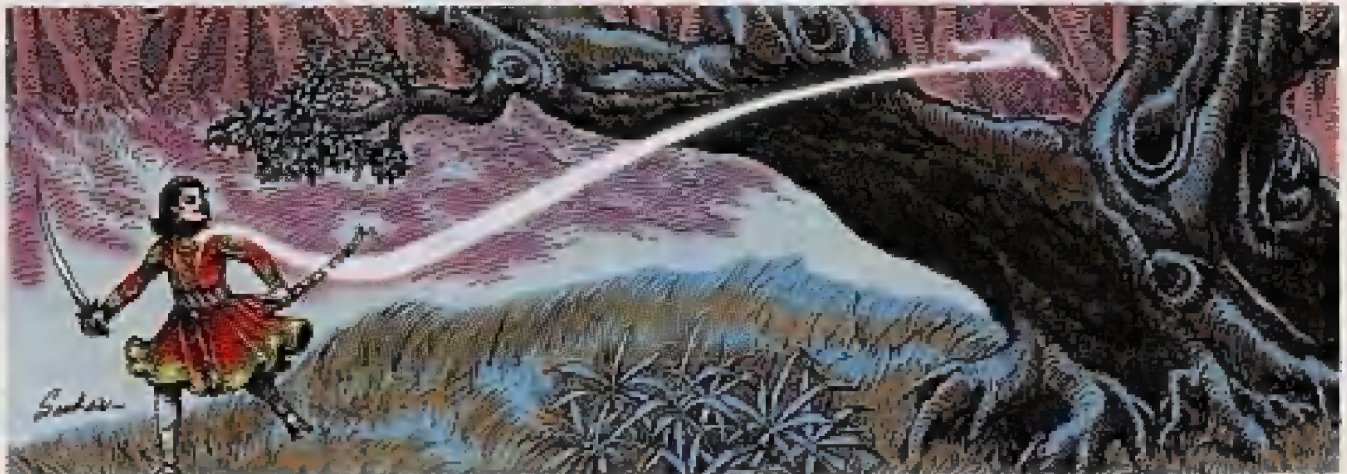
सिखों के दस गुरुओं में से तीन गुरु अप्रैल महीने में ही इस धराधाम पर आये। सन् 1504 में 23 अप्रैल को गुरु अंगद ने, सन् 1563 में 14 अप्रैल को गुरु अर्जुन ने तथा सन् 1621 में 12 अप्रैल को गुरु तेगबहादुर ने जन्म लिया।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, सिख धर्म का प्रवर्तन गुरु नानक (1469-1538) ने किया। अपने अन्तिम दिनों में समुदाय का मार्ग-दर्शन करने के लिए अपने शिष्यों में से किसी एक को अपना उत्तराधिकारी बनाना उन्हों ने आवश्यक समझा। उनके शिष्यों में उनके दो बेटे भी थे। किन्तु गुरु नानक व्यक्तिगत सम्बन्धों से बहुत ऊपर थे। उनकी दृष्टि में अंगद सबसे अधिक योग्य था। इसलिए उन्होंने उसे ही अपना उत्तराधिकारी बनाया।

और वास्तव में गुरु अंगद एक उच्च कोटि के नेता और उपदेशक सिद्ध हुए।

पाँचवें गुरु अर्जुनदेव चौथे गुरु रामदास के पुत्र थे। अर्जुन देव ने ही पवित्र पुस्तक 'आदि ग्रंथ' का संकलन किया जिसमें उन्होंने अपने पहले के गुरुओं की रचनाओं एवं हिन्दू धर्म की वाणियों को सम्मिलित किया।

उन्होंने सम्राट जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह करनेवाले उसके बेटे राजकुमार खुसरो की सहायता की। उन्होंने खुसरो की मदद उसकी राजनीतिक महत्वाकांक्षा को प्रोत्सहित करने के लिए नहीं, बल्कि उसकी संकटापन्न स्थिति पर दया आ जाने के कारण की। लेकिन यह जहाँगीर को अच्छा नहीं लगा और उन्होंने गुरु अंगद को मार डाला।

नवें गुरु गुरुतेग बहादुर सम्राट औरंगजेब के क्रोध के शिकार हुए क्योंकि उन्होंने कश्मीर के ब्राह्मणों पर उसके क्रूर अत्याचार का बिरोध किया। औरंगजेब ने उन्हें बातचीत करने के लिए बुलाया और धोखे से बन्दी बनाकर क्रूरतापूर्वक मार डाला।

सिखों के इतिहास में इस घटना ने एक मोड़ ला दिया। गुरु तेग बहादुर के पुत्र वीर गुरु गोविन्द सिंह ने मुगल शासक के अत्याचारों के विरुद्ध सिखों को अनवरत युद्ध के लिए प्रेरित किया और इसके लिए ऐसे बहादुर नौजवान सिखों का एक दल तैयार किया जो अपने देश के हित प्राणों की आहुति देने के लिए हर समय तैयार हों। उन्हें खालसा यानी पवित्र कहा गया, जिनके नाम पर खालसा पंथ चला जो देशभक्ति, ईश्वर भक्ति, बहादुरी और पुरुषार्थ के अनोखे संगम का पर्याय बन गया।

आग के लिए

जाड़े का मौसम था। कड़ाके की ठंढ पड़ रही थी। इसलिए रात ढलते ही गाँववाले खा-पीकर अपने-अपने घरों के अन्दर चले गये और जल्दी ही सो गये। अभी आधी रात भी नहीं हुई थी कि पूरे गाँव में सन्नाटा छा गया। कभी-कभी चौकीदार की "सावधान, सावधान" की आवाज मन में सिहरन पैदा कर देती।

कई दिनों से जमींदार अपनी रैयत का मुकदमा सुनने के लिए कचहरी में ही डेरा डाले था। इसलिए चौकीदार बड़ी मुस्तैदी से पहरा दे रहा था। आधी रात के पहले ही अब तक वह गाँव का चार चक्कर लगा चुका था।

माघ की कड़ी सर्दी के कारण उससे चला नहीं जा रहा था। तेज पछवा हवा नश्तर की तरह हड्डी में चुभ रही थी। उसने अपनी जेब टटोली तो एक चुरुट अब भी पड़ा था।

उसने आग के लिए सामने की झोंपड़ी का दरवाज़ा खटखटाया।

"कौन है? क्या चाहिए?" नींद में दरवाज़ा खोल कर झल्लाती हुई एक बुढ़िया बोली।

"मैं गाँव का चौकीदार हूँ दादी। तेरे चूल्हे में आग की चिनगारी हो तो जरा लाना। चुरुट जलाना है। ऐसी ठंड तो कई सालों पर पड़ी है!" चौकीदार ने अपने मुँह पर से कपड़ा हटाते हुए कहा।

"बेटे! कुछ दिनों से तो मेरे यहाँ चूल्हा ही नहीं जला। जब से जमींदार कचहरी में आये हैं, दोपहर का खाना वहीं से मिल जाता है। रात में मन्दिर के प्रसाद से पेट भर जाता है।" यह कहती हुई बुढ़िया ने दरवाज़ा बंद कर लिया।

चौकीदार ने झोंपड़ी के पड़ोस वाले का दरवाज़ा खटखटाया। बहुत देर के बाद एक युवक ने दरवाज़ा खोला तो चौकीदार ने कहा, "भैया! घर में दियासलाई या आग की चिनगारी हो तो जरा लाना। चुरुट सुलगाना है। कम्बख्त ठंढ बहुत है।"

"दोनों ही नहीं हैं भाई! पत्नी ने किसी पड़ोसी से आग मांग कर चूल्हा जलाया और रसोई बना

कर पानी से आग बुझा दी। आगे देख लो।" जंभाई लेता हुआ वह भी दरवाज़ा बन्द कर अन्दर चला गया।

"यह कम्बख्त जमींदार न कचहरी में होता, न मुझे रात भर जागना पड़ता।" यह सोचता हुआ चौकीदार "सावधान, जागते रहो" जोर से चिल्लाया।

कचहरी की याद आते ही उसे जमींदार के नौकरों की याद आई। "वे कम्बख्त अभी नहीं सोये होंगे। वहाँ मेरा काम बन जायेगा।" यह सोच कर वह 'सावधान' चिल्लाता हुआ तेजी से कचहरी की ओर चल पड़ा।

कचहरी में अभी तक दीवान तथा गुमास्ते में कुछ बातचीत हो रही थी। चौकीदार को देखकर दीवान ने शाबाशी देते हुए कहा,-" बहुत अच्छी तरह अपना फर्ज निभा रहे हो। इतनी रात बीत जाने पर भी पहरा दे रहे हो। बहुत अच्छी बात है।"

चौकीदार ने अपनी लाठी और लालटेन जमीन पर रख दी और दोनों हाथ जोड़ कर और झुक कर प्रणाम किया। और कहा,-"आप का सेवक हूँ मालिक। आप की दया से अपना काम वफादारी से करता हूँ मालिक।"

"लेकिन कचहरी की तरफ कैसे आये। यह तो गाँव से बाहर पड़ता है। पहरा तो गाँव में देना है। इधर आकर झपकी लेने का इरादा तो नहीं है?" गुमास्ते ने हल्के से डाँटते हुए कहा।

चौकीदार ने कहा, -"राम, राम! आपने यह क्या कह दिया मालिक! रात में ड्यूटी के समय हमारे लिए आराम हराम है। गाँव की रक्षा मेरी जिम्मेदारी है। और यह जिम्मेदारी पूरी वफादारी के साथ निभाता हूँ मालिक।"

फिर रुक कर बोला,-"बात यह थी मालिक कि सर्दी बहुत है और मुझे चुरुट पीने की इच्छा हो रही है। इसलिए सोचा कि आप के नौकरों से थोड़ी आग मिल जायेगी।"

"लेकिन लालटेन तो तुम्हारे हाथ में है। इससे क्या चुरुट जला नहीं सकते हो?" दीवान ने प्रश्न भरी नज़र से देखते हुए कहा।

यह सुन कर चौकीदार के चेहरे का रंग उड़ गया।

"सचमुच, क्या मेरी अक्ल घास चरने चली गई थी? मैं भी कितना मूर्ख हूँ। आग लेकर आग ढूंढ रहा हूँ। इसी को कहते हैं-घर में पूत, गाँव में ढिंढोरा।" शरमा कर यह कहते हुए अपनी लाठी और लालटेन उठा कर चौकीदार झट वहाँ से चलता बना।

"सावधान! जागते रहो!" सन्नाटे को चीरती हुई यह आवाज सुनकर दीवान और गुमास्ता ठठा कर हँस पड़े।

स्वर्ण-सिंहासन

5

[अब तकः हैहय वंश के कौंडिन्य अधिपति पौरस्यत ने दक्षिणा पथ के राज्यों को जीत कर एक बृहत साम्राज्य की स्थापना की। उसके अयोग्य उत्तधिकारी साम्राज्य की अखण्डता की रक्षा नहीं कर सके। कालिन्दी, चम्पक और कुन्द के राजा स्वतन्त्र हो गये। कौंडिन्य पुनः एक छोटा राज्य मात्र रह गया। चम्पक के राजा ने अन्य राजाओं को अपने पक्ष में मिला कर कौंडिन्य पर आक्रमण करने की योजना बनाई। कौंडिन्य के राजा श्रीदत्त को अपने गुप्तचरों से जब यह खबर मिली तो उसने अपने पुत्र विजय दत्त को गुरुकुल से बुला कर दक्षिण के अन्य राजाओं के षड्यंत्र से अवगत कराया। श्रीदत्त ने अपने राज गुरु के आदेश से खुदाई से प्राप्त अपने पूर्वजों के स्वर्ण-सिंहासन पर अपने पुत्र विजय दत्त के राज्याभिषेक का आयोजन किया। विजय दत्त ने स्वर्ण-सिंहासन पर जैसे ही आरुढ होना चाहा कि एक गंभीर आवाज आई - "रुक जाओ विजय दत्त"......**इसके उपरान्त**]

विजय इस अप्रत्याशित आवाज से चौंक गया और उसके कदम अनायास ही पीछे हट गये। बेद गान करनेवाले ब्राह्मण अवाक् रह गये। वाद्यकार शान्त हो गये। दर्शक भयभीत हो गये। पूरे समारोह मण्डप में सूचिकापात नीरवता छा गई। किसी को पता नहीं चला कि आवाज़ कहाँ से आई।

राजगुरु शिवानन्द भी इस अप्रत्याशित व्यवधान से सहम गये। उन्होंने राजा श्रीदत्त को भी इसके कारण चिंतित और निस्तेज होते देखा। यद्यपि उन्हें विजयदत्त की जन्म कुण्डली के आधार पर यह पूर्ण विश्वास था कि वह अपने बलवान ग्रहों के प्रभाव से मार्ग की सभी बाधाओं को हटाता हुआ एक दिन सार्वभौम सम्राट अवश्य बन जायेगा, फिर भी उन्हें इस बात का दुख था कि उस रहस्यमय सिंहासन की मांत्रिक प्रक्रिया को वे समझ नहीं पा रहे थे।

स्वयं मंत्रविद होने के कारण उन्हें इतना अवश्य ज्ञान हो गया कि यह सिंहासन बहुत बड़े सिद्ध मांत्रिक की सृष्टि है और उसका कण-कण सजग और सचेतन है। उसकी रचना प्रणाली ऐसी

स्वचालित है कि कोई अयोग्य और अनधिकृत शासक और अपवित्र आत्मा का व्यक्ति इसे प्राप्त नहीं कर सकता। केवल सही उत्तराधिकारी ही इस पर आरूढ हो सकताहै।

लेकिन अपनी मंत्र शक्ति से सिंहासन के रहस्य को खोल पाने में असमर्थ थे। इसीलिए वे भी अन्य दर्शकों के समान इस रहस्यमय घटक के मूक दर्शक बने हुए थे। यही कारण था कि जब विजय दत्त ने मार्ग-दर्शन और सहायता के लिए उनकी ओर देखा तो उन्होंने मौन संकेत से असमर्थता प्रकट करते हुए मानों यह कहा कि इस रंगमंच के धीरोदात्त नायक केवल तुम हो। यदि सिंहासन पर तुम्हारी विजय हो गई तो युद्ध भूमि में भी तुम्हारी विजय होगी। इसलिए अपनी अंतःप्रेरणा और आत्मा से जो आदेश मिले वही करो। जब राजगुरु से कोई संकेत नहीं मिला तो कुछ देर के बाद अपने को संयत करते हुए विजयदत्त ने भी गंभीर स्वर में प्रश्न किया, -"कौन? कौन हो तुम जो वेद मंत्रों के द्वारा आह्वान किये गये देवताओं के साक्ष्य में सम्पन्न हो रहे शुभ समारोह में बाधा डाल रहे हो?"

वहाँ उपस्थित सभी जन सांस रोक कर इस प्रश्न के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। तभी आकाशवाणी की तरह प्रेम और माधुर्य से ओतप्रोत पुनः एक स्वर सुनाई पड़ा, -"विजयदत्त, तुम्हारे सामने इस अद्‌भुत सिंहासन की पहली सीढ़ी पर दायीं ओर की प्रतिमा में मैं सालभंजिका हूँ। मैंने ही तुम्हे सिंहासन की ओर आगे बढ़ने से रोका है।"

विजयदत्त ने हाथ जोड़ कर अपने उद्दण्ड आचरण पर लज्जित होते हुए कहा,-"हे दिव्य मातृ शक्ति, मैंने ऊँचे स्वर में आप से प्रश्न पूछ कर बहुत बड़ा अपराध कर दिया। इसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। इस दिव्य सिंहासन के शिखर पर अपने वंश की कुल देवी की प्रतिमा देख कर ही मुझे साहस हुआ और सिंहासन पर आरूढ होने को आगे बढ़ा। अपने वंश का स्वर्ण-सिंहासन समझ कर ही मैं विश्वास के साथ आगे बढ़ रहा था कि आपने अकस्मात मुझे रोक दिया जिसकी मैंने कभी कल्पना नहीं की थी। अब मेरा मन कई शंकाओं से बोझिल हो रहा है। यद्यपि मैंने इसके रक्षक सर्पराज पर विजय प्राप्त कर ली है और वे हर समय पुष्पमाला के रूप में मेरे कण्ठ पर विराजमान हैं, फिर भी मेरे मन में यह प्रश्न घुमड़ रहा है कि क्या यह स्वर्ण-सिंहासन हमारे वंश का नहीं है। और यदि है तो आप के रोकने का अभिप्राय क्या है? क्या आप

कृपा करके बतायेंगी?"

सालभंजिका ने ममता भरे स्वर में कहा, - "पुत्र विजयदत्त, तुम्हारी विनम्रता से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। आशा है, जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस सिंहासन की रचना हुई है, उसे तुम अवश्य पूरा कर पाओगे।

"सदियों से भूगर्भ में निक्षिप्त यह अपूर्व सिंहासन तुम्हारे ही वंश की धरोहर है। बहुत वर्ष पहले महाराज पौरस्वत तुम्हारे वंश के पूर्वज थे। उनका यश चारों दिशाओं में व्याप्त था। तुम्हें ज्ञात होगा कि उन्होंने सम्पूर्ण दक्षिण भारत को एक सूत्र में बाँध कर एक सार्वभौम साम्राज्य की स्थापना की थी। निःसंतान होने के कारण उन्होंने अपने भाई के पुत्र हयग्रीव को अपना उत्तराधिकारी बनाया। किन्तु अपनी अयोग्यता के कारण वह सर्वत्र अपमानित होता रहा। इससे सर्वाधिक चिन्तित थे पुलिन्द भट्टारक।

"पुलिन्द भट्टारक एक कुशल महामंत्री थे। वे हयग्रीव को पुत्रवत प्यार करते थे। उन्होंने सब प्रकार से हयग्रीव को योग्य बनाने का प्रयास किया किन्तु सफल न हो सके। उन्होंने ही इस सिंहासन की प्रकल्पना की और इसके लिए आवश्यक स्वर्ण और मूल्यवान मणियों का प्रबन्ध किया और विश्वासपात्र स्वर्णकारों से इसका निर्माण करवाया। लेकिन यह रहस्य हयग्रीव को नहीं बताया।

"इस सिंहासन के निर्माण के बाद पुलिन्द भट्टारक ने अपनी उच्च कोटि की मंत्र शक्ति का प्रयोग कर तीन महाशक्तियों का आवाहन किया और दायीं ओर की तीनों सीढ़ियों पर स्थित तीन

सालभंजिकाओं की सृष्टि की। ये देखने में निष्प्राण प्रतिमाएं लगती हैं, किन्तु वास्तव में ये सचेतन हैं। उनकी तीन महाशक्तियाँ भी हम ही तीनों हैं। मैं सत्य हूँ। दूसरी सीढ़ी पर की सालभंजिका धर्म है। अंतिम सीढ़ी पर न्याय है। हमारे सामने की तीनों सीढ़ियों पर की तीन सालभंजिकाएँ भी सत्य, धर्म और न्याय की शक्तियाँ हैं, लेकिन वे उनकी स्थूल शक्तियाँ हैं जबकि हम सब सूक्ष्म शक्तियाँ हैं।

"राजधर्म बहुत सूक्ष्म होता है। सत्य, धर्म और न्याय के सूक्ष्म रूपों को जो राजा भली भाँति समझ कर उनका आचरण करता है, वही उत्तम कोटि का राजा कहलाता है। राज्य-व्यवस्था एक भवन के समान है जिसके सत्य, धर्म और न्याय तीन स्तम्भ हैं। इन तीनों का पालन करने वाला उत्तम राजा ही उसका चौथा स्तम्भ है। यदि चौथा स्तम्भ दुर्बल

रूप से तैयार होने के पहले ही हयग्रीव की अकस्मात मृत्यु हो गई। पुलिंद हयग्रीव को इतना प्यार करते थे कि उसकी मृत्यु के बाद इन्हें राजधर्म से वैराग्य हो गया और संन्यास लेना चाहा। किन्तु ऐसे अपूर्व और अलौकिक सिंहासन को इस प्रकार छोड़ कर जाना भी नहीं चाहते थे। इसलिए उन्होंने एक ऐसी योजना बनाई जिससे यह किसी अयोग्य राजा के हाथ न पड़े और भविष्य में उसी वंश के समर्थ राजा को प्राप्त हो। वही योग्य राजा दूसरा पौरस्वत होगा। उन्होंने मंत्रशक्ति द्वारा ऐसा कार्यक्रम बनाया जिससे भविष्य में सिंहासन के योग्य राजा का स्वतः चुनाव हो जाये और सिंहासन के सृष्टिकर्ता तथा उसके योग्य राजाओं का नाम इतिहास में अक्षुण्ण बना रहे।

"उन्होंने अपनी मंत्रशक्ति से एक महासर्प की रचना की और उसे इस सिंहासन का रक्षक नियुक्त किया। महासर्प द्वारा पूछे गये प्रश्न का सही उत्तर देनेवाला ही इसका योग्य उत्तराधिकारी होगा और सही उत्तर वही दे सकेगा जो धर्म सूत्रों का ज्ञाता होगा। सिंहासन प्राप्त कर लेने के बाद उसकी परीक्षा सिंहासन की तीनों सीढ़ियों पर स्थित साल भंजिकाएँ करेंगी।

"पहली परीक्षा में तुम उत्तीर्ण हो गये हो। अब हमारी बारी है। हम तीनों तुम्हें एक-एक कहानी सुनायेंगी और उसके बाद तत्सम्बन्धी प्रश्न पूछेंगी। उनके सही उत्तर देने पर ही तुम सिंहासन पर आसीन हो सकते हो। तभी तुम्हें इस सिंहासन पर बैठकर सुचारु रूप से शासन चलाने का अवसर मिलेगा। पुलिन्द भट्टारक ने हयग्रीव के लिए एक

हो तो तीनों स्तंभ भी कमजोर हो जाते हैं और राज्य-व्यवस्था का भवन ध्वस्त हो जाता है। सत्य, धर्म और न्याय के सूक्ष्म रूपों का पालन वही राजा कर सकता है जो अपनी प्रजा को पुत्रवत प्यार करता हो, उसके लिए हर प्रकार के व्यक्तिगत स्वार्थ का त्याग करने के लिए हर समय तत्पर रहता हो, जिसका हृदय सागर से भी विशाल और जिसका विचार आकाश से भी ऊँचा हो, जिसका चरित्र महान हो।

"तुम्हारे पूर्वज महाराज पौरस्वत ने राजधर्म के सूक्ष्म और स्थूल दोनों रूपों को अपने जीवन में उतारा था, किन्तु, हयग्रीव ने राजधर्म के केवल स्थूल रूप को ही समझा। इसलिए उसकी सहायता करने के लिए पुलिन्द भट्टारक ने हम सालभंजिकाओं की सृष्टि की। लेकिन इस अद्भुत सिंहासन के पूर्ण

और अनोखी वस्तु-चन्द्रहास की, मंत्र द्वारा रचना की थी। हमारी परीक्षा में सफल होने के बाद तुम उसके भी स्वामी हो जाओगे। यदि तुमने हमारे किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया तो तुम्हारे कण्ठ में शोभित श्वेत कांति फैलानेवाली माला अदृश्य हो जायेगी। यह सिंहासन भी अदृश्य हो जायेगा और अपने पूर्व स्थान पर पहुँच जायेगा।"

वहाँ उपस्थित सभी लोग सांस रोक कर सालभंजिका की बातें सुन रहे थे।

महाराज श्रीदत्त, जो अब तक अपने और अपने बेटे विजयदत्त के भाग्य पर फूला नहीं समा रहे थे, अब चिन्तित हो उठे। अनेक प्रकार की शंकाएं उनके मन में उठने लगीं। सिंहासन जैसा खजाना प्राप्त करने के बाद जितना वे प्रसन्न थे, अब वे उतने ही दुखी दिखाई दे रहे थे। अपने बेटे विजय को इस दुस्थिति के चक्र व्यूह में अभिमन्यु के समान घिरे देख कर वे अत्यन्त दुखी हो रहे थे। विजयदत्त के बायीं ओर खड़ी श्रीलेखा के चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ कभी बनतीं और कभी मिट जातीं। हाथ में मंगल-कलश लिए गुरु शिवानन्द शान्त और गंभीर खड़े थे। राजदरबारियों और दर्शकों के हृदय में उत्सुकता, भय और शंका की लहरें हिलोरें मार रही थीं। इन सब के बीच चट्टान की तरह स्थिर, निश्चिन्त, निर्भय होकर आत्म-विश्वास के साथ यदि कोई खड़ा था तो वह था विजयदत्त।

उसने पीछे मुड़ कर पिता श्रीदत्त और गुरु शिवानन्द के चरण-स्पर्श किये और पहली सीढ़ी पर स्थित सालभंजिका को सम्बोधित करते हुए कहा,-"हे सत्यरूपिणी माँ, मैं आप की परीक्षा के

लिए तैयार हूँ। और सफलता के लिए आप के आशीर्वाद की याचना और प्रार्थना करता हूँ।"

"तुम्हारे धीरोदात्त आचरण के लिए मैं तुम्हारा अभिनन्दन करती हूँ और एक कहानी सुनाती हूँ। ध्यान पूर्वक सुनो।" यह कह कर प्रथम सीढ़ी की सालभंजिका ने कहानी सुनाना शुरू किया।

"त्रिपुरांतक देश पर कालकेतु नाम का एक मूर्ख राजा राज्य करता था। वह राजकाज में किसी बुद्धिमान की सलाह भी नहीं लेता था। उसका विश्वास था कि सिंहासन पर जो भी आसीन होता है और जिसके हाथ में शासन-दण्ड होता है, वह साक्षात भगवान से कम नहीं होता। इसलिए उसे किसी से सलाह लेने की आवश्यकता नहीं है।

इसलिए वह अपने मन से राज्य की शासन-व्यवस्था करता। फलतः उसके निर्णय गलत होने

लगे और देश की व्यवस्था अधोगति की ओर जाने लगी। खुशामदी और भ्रष्ट अफसरों की बन आई। वे राजा की झूठी प्रशंसा कर अपना स्वार्थ साधने लगे। प्रजा की भलाई के लिए दी गयीं राजकोष की मुद्राएँ अधिकारी स्वयं हड़पने लगे। राजकोष जब खाली होने लगा तो प्रजा से भारी कर लिया जाने लगा। जल की कमी हो गई। कुएँ और सरोवर सूख गये। वर्षा ही एक मात्र सहारा रह गई।

कला और साहित्य के क्षेत्र में भ्रष्टाचार फैलने लगा। केवल सुन्दर स्त्रियों को नृत्य-प्रदर्शन का अवसर मिलता था। अधकचरे और निम्न रुचि के चित्र और काव्य को प्रोत्साहन दिया जाता था। योग्य कलाकारों और साहित्यकारों का निरादर किया जाता था। देश भक्ति के नाम पर दूसरे देशों में जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। उसकी दृष्टि में कविता ही सभी बुराइयों की जड़ थी। कविता की रचना या गान करनेवालों को कड़ी से कड़ी सजा सुनाई जाती।

कालकेतु के इस प्रकार के शासन से सबसे अधिक दुखी थी उसकी रानी हेमावती। वह स्वयं कवयित्री एवं अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त संस्कृत की विदुषी थी। पति की मूर्खता उसके लिए असहनीय थी, फिर भी चुपचाप रहती थी।

उसका पारिवारिक जीवन भी दुर्भाग्यपूर्ण था। राजा को पहली रानी से संतान नहीं होने के कारण उसने दो और विवाह किये। किन्तु उनसे भी कोई संतान नहीं हुई। वह अपनी तीनों रानियों के साथ साधारण स्त्रियों के समान व्यवहार करता था।

राजा के अत्याचार से प्रकृति भी कुपित हो गई। दो वर्षों से वर्षा नहीं हुई। फलतः देश भर में अकाल पड़ गया। राजा को लाचार होकर अन्य देशों से अनाज मंगाना पड़ा। और उस अनाज को भी अधिक दाम पर बेच कर अनुचित पैसे कमाने लगा।

जिनके पास अनाज खरीदने के लिए पैसे नहीं थे, वे चोरी और डाका डालने लगे। नकाबपोश के नेतृत्व में हर तरह का अपराध बढ़ने लगा।

नकाब पोश का वास्तविक नाम चित्ररथ था। भगवान चित्ररथ के आशीर्वाद से जन्मा यह बालक यद्यपि शस्त्र और शास्त्र में निपुण था, फिर भी अपराधियों का सरगना कैसे बना, यह किसी को नहीं मालूम था। चोरी का माल या धन वह अपने लिए प्रयोग में नहीं लाता बल्कि गरीबों में बाँट देता था। उसे लोग भगवान चित्ररथ का अवतार मानने लगे। उसके बारे में तरह-तरह की कहानियाँ फैलने लगीं।

तभी एक विचित्र घटना हुई।

एक शुक्रवार के दिन महारानी हेमावती कुल की रीति के अनुसार चित्ररथ स्वामी के मन्दिर में पूजा करने गई। मंदिर से लौटते समय उसकी दृष्टि एक वृद्ध साधु पर पड़ी। उसने उसे अनायास ही हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। साधु ने उसे मुस्कुरा कर आशीर्वाद दिया और एक संस्कृत श्लोक सुनाया, जिसका भाव इस प्रकार था:

"सुगन्ध विकीर्ण करनेवाले मनोहर पुष्पों से लदी जायलता, उसी की रक्षा के लिए बनाये गये बितान से, चाहे वे कण्टकाकीर्ण क्यों न हों, बड़े ही प्यार से लिपट जाती है। इससे उन जाय पुष्पों का सहज सौरभ लुप्त नहीं हो जाता। बल्कि वह बितान भी लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करता है।"

यह श्लोक सुन कर हेमावती की आँखें छलछला गईं। वह अपने भावोद्वेग को रोक न सकी और उसने साधु के चरण-स्पर्श कर लिये।

राजा को जब यह खबर मिली तो उसने साधु का श्लोक सुनने और उसके चरण-स्पर्श करने के अपराध में रानी को एक महीने का कारावास-दण्ड दे दिया। राजा ने साधु को भी बन्दी बना कर उसे धूप में खड़ा कर दिया और स्वयं उसे कोड़े से मार कर बेहोश कर दिया।

पूर्व सेनापति और देशभक्त श्रीमल्ल को यह सब अनुचित और असहनीय लगा। उसका हृदय दुख और क्रोध से भर उठा। उसने अपने देश और देशवासियों की दुःस्थिति का वर्णन करते हुए पड़ोसी राजा चन्दन वर्मा को निम्नलिखित पत्र लिखा:

"हमारे मूर्ख राजा के कारण हमारे देशवासियों में दिन ब दिन मानवीय चेतना लुप्त होती जा रही है। हर व्यक्ति अपने बचाव में किसी को भी मारने के लिए तैयार रहता है। हर व्यक्ति स्वार्थी हो गया है। इसका कारण है कि राजा स्वयं स्वार्थी है। उसके अत्याचारों के कारण देश में जल और अन्न का अकाल पड़ गया है। नदी, सरोवर, ताल सब सूख गये हैं। कई वर्षों से वर्षा नहीं हुई। लोग भूख मिटाने के लिए चोरी और लूट-खसोट कर रहे हैं। यही स्थिति यदि और कुछ दिन बनी रही तो हमारे देश का नाम लेने मात्र से लोग घृणा करेंगे। इस स्थिति में सुधार लानेवाला तथा जनता को जगानेवाला इस देश में कोई नहीं है। एक ही समर्थ व्यक्ति था जो देश का उद्धार कर सकता था। किन्तु वह नकाबपोश बन कर ग़लत मार्ग पर चल रहा है। मैं वृद्ध, असक्त और असमर्थ हूँ। केवल आप ही इस देश को वर्तमान दुःस्थिति से मुक्ति दिला सकते हैं।"

उसने यह पत्र अपने पालतू तोते के द्वारा पड़ोसी राजा चन्दन वर्मा के पास भेज दिया।

भारत की

एक महान सभ्यता की झाँकियाँ :
युग-युग में सत्य के लिए इसकी गौरवमयी खोज

4. पावन नदी की उत्पत्ति

रविवार होने के कारण संदीप और चमेली का स्कूल नहीं था और उन्हें शाम तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं थी और न ही वे ऐसा चाहते थे। देवनाथ ने समाचार पत्र पढ़ना अभी-अभी समाप्त ही किया था कि चमेली खिलखिलाती हुई उनकी गोद में आ धमकी। सन्दीप अपने व्यवहार में अधिक संयमित था। लेकिन उसकी उत्सुकता चमेली से कम बलवती नहीं थी, यद्यपि उसके चेहरे से ऐसा नहीं लगता था।

देवनाथ का पुत्र श्री कुमार भी, जो व्यापार-कार्याधिकारी था और जिसे सिर्फ रविवार को ही बच्चों के साथ कुछ समय बिताने के लिए फुरसत मिलती थी, अपने पिता के कमरे में आ गया। "तुम सब पिता जी के साथ, लगता है, युद्ध करने आये हो।" बच्चों को डाँटने का बहाना करते हुए उन्होंने कहा।

"हां डैड, उनका ज्ञान लूटने के लिए युद्ध", चमेली ने कहा।

"यदि मैं नहीं जानता कि इस विशेष स्थिति में ग्रैंडपा को लूटने से वे कभी गरीब नहीं होंगे तो मैं चमेली का कभी साथ नहीं देता। वे सदा उतना ही समृद्ध बने रहेंगे।" संदीप ने कहा।

श्री कुमार ने मन ही मन बच्चों की हाजिरजवाबी की सराहना की। वह मुस्कुराया और अपने पिता से समाचार पत्र लेकर बाहर निकल आया।

"अब हम पावन गंगा में गोता लगायें।" चहकती हुई चमेली बोली। "आपने हमें यह बताने का वादा किया था कि वह क्यों पावन है।"

ग्रैंड पा ने कहना शुरू किया।

"तुम जानते हो, हिमालय पर्वत युगों से भारत का महानतम गौरव रहा है। यह सचमुच एक विचित्र क्षेत्र है। रहस्यवादियों का विश्वास है कि यहाँ अगोचर शक्तियों का निवास है। यह अपने आप में एक लोक है। शायद यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि हिमालय में कितने ही लोक छिपे हुए हैं।"

"कितने ही लोक से आप का तात्पर्य क्या है, ग्रैंड पा?" संदीप ने प्रश्न किया।

क्रमशः, विश्वास

"सिर्फ दृश्य जगत का ही अस्तित्व नहीं होता? कुछ ऐसे भी जगत हैं, जिन्हें हम देख नहीं सकते। उनके अस्तित्व के लिए भौतिक स्थानों की आवश्यकता नहीं होती। एक ही देश-काल में अनेक लोकों का अस्तित्व हो सकता है।"

"बिना देखे उन्हें क्या हम जान सकते हैं?" चमेली ने पूछा।

"तुम मेरे मन को और यहाँ तक कि अपने मन को भी देख नहीं सकते। किन्तु फिर भी अनुभूति से जानते हो कि मन का अस्तित्व है। ऐसे ऋषि और मुनि हैं जो अपनी अनुभूति से अदृश्य जगत के बारे में जानते हैं।" ग्रैंड पा ने कहा और उन्हें यह कथा सुनाई।

"बहुत पहले की बात है। एक बार नारद मुनि पृथ्वी की सैर करके अपने स्वामी भगवान विष्णु के निवास गो लोक में वापस लौट रहे थे। उनके गन्तव्य का मार्ग हिमालय से होकर जाता था, उन पर्वतों के भौतिक, स्थूल रूप से होकर नहीं बल्कि उनमें छिपे सूक्ष्म लोकों से होकर।

"यह सभी अच्छी तरह जानते हैं कि नारद वीणा बजानेवाले असाधारण संगीतज्ञ थे। ये गायक थे और हमेशा भगवान का गुण-गान करते रहते थे। संगीत में मग्न होकर वे विशाल और दिव्य हिमालय के दोनों स्थूल और सूक्ष्म दृश्यों का आनन्द लेते हुए धीरे-धीरे ऊपर उठ रहे थे। चाँदनी रात थी। वे ऊँचाई पर एक सुनहली घाटी से गुजर रहे थे, तभी उनकी दृष्टि अनेक सुन्दर आकृतियों पर पड़ी-कुछ बैठी हुईं, कुछ टहलतीं और कुछ चन्द्र-किरणों से धुली हिम-शिलाओं पर लेटी हुईं।

नारद ने गाना बन्द कर दिया और उन आकृतियों को निहारते खड़े रहे। उनकी रूप-रेखाओं और मोहक मुस्कान पर वे चकित थे।

नारद निस्सन्देह जानते थे कि वे अलौकिक सत्ताएँ हैं। लेकिन इन सत्ताओं में बहुत विविधताओं के कारण वे यह नहीं जान सके कि वे किस कोटि की अलौकिक सत्ताएँ हैं।

वे उनके अधिक निकट गये। उन सब ने खड़ा होकर और हाथ जोड़ कर उन्हें प्रणाम किया।

"आप लोग कौन हैं?" नारद ने पूछा।

उनमें से एक ने उत्तर दिया,-"हम सब वे गन्धर्व हैं जो राग और रागिनियों की आत्माएं होती हैं।"

नारद ने शीघ्र ही देखा कि उन सत्ताओं में कुछ न कुछ विकृति आ गई है। कुछ के गालों पर खरोंच थे तथा कुछ के शरीर पर कोड़ों के दाग और कुछ के ऊपर घूंसों के निशान थे।

"यह सब क्या है? आप लोगों को किसने क्षत-

विक्षत कर दिया है?" नारद ने आश्चर्य से पूछा।

गन्धर्वों ने उन्हें सच्ची बात बता दी। जब भी गायक अहंकार के साथ और राग के प्रति बिना प्रेम के गाता या गाते समय असावधानी के कारण गलतियाँ करता या अनावश्यक चेष्टा करता; जब भी संगीतकार अपना वाद्य यंत्र बजाते समय वही
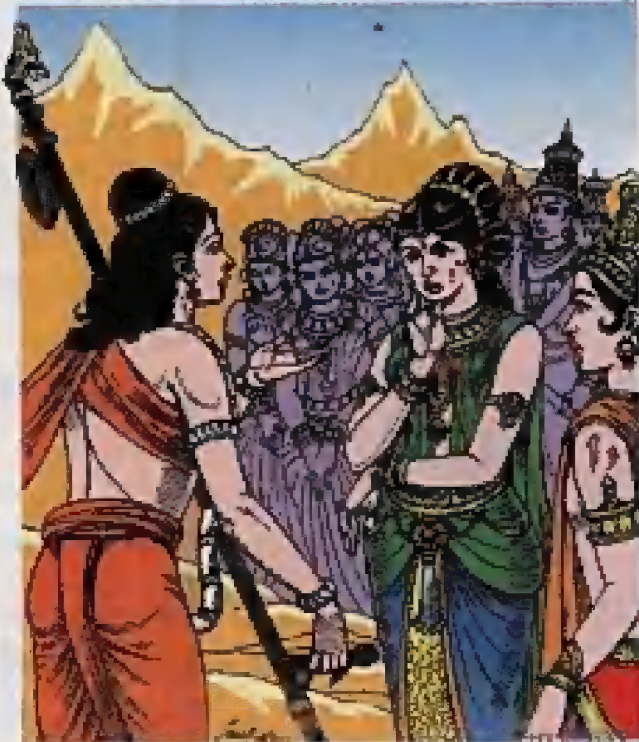
सब करता तो तत्सम्बन्धी राग की गन्धर्व-आत्मा को आघात पहुँचता या उसे खरोंच लगता। इस प्रकार कई वर्षों में वे विकृत हो गये।

नारद का सिर शर्म से झुक गया, क्योंकि वे भी संगीतज्ञ थे।

कुछ देर की शांति के पश्चात नारद ने पूछा,- "हे उदात्त गन्धर्व गण, कृपया यह बतायें कि इस क्षति की पूर्ति के लिए क्या किया जा सकता है?"

"यदि हमें परिपूर्ण और शुद्धतम संगीत सुनने का अवसर मिले तो हमारे आहत अंग पुनः स्वस्थ हो जायेंगे।"

"किन्तु परिपूर्णतम संगीत कहाँ मिल सकता है? क्या आप कुछ संकेत दे सकते हैं?"

"जी हां, भगवान शिव परिपूर्णतम गायक हैं। किन्तु, हमलोगों के लिए उन्हें गाने की परवाह क्यों हो!" गन्धर्वों ने अपना विचार दिया।

"भगवान शिव की करुणा अनन्त है। मैं उन्हें गाने के लिए मनाता हूँ।" यह कह कर नारद ने उनसे विदा ली।

नारद को भगवान शिव को गाने के लिए मनाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। वे तुरन्त तैयार हो गये। लेकिन उन्होंने कहा कि मेरी समस्या यह है कि जब तक श्रोताओं में एक भी परिपूर्ण श्रोता न हो तो मैं गा नहीं सकता।

"परिपूर्ण श्रोता कौन हैं?" नारद ने पूछा।

"परिपूर्ण श्रोता केवल दो हैं-ब्रह्मा और विष्णु।" भगवान शिव ने रहस्य खोला।

नारद तुरन्त दोनों देवताओं से मिलने चल पड़े। दोनों ने कहा कि भगवान शिव के संगीत का आनन्द लेना तो दुर्लभ अवसर है। इसे कौन छोड़ना चाहेगा।

इस घटना के लिए एक समय निर्धारित किया गया। भगवान शिव के निवास कैलास पर ब्रह्मा और विष्णु पधारे। सारा वातावरण संगीतमय हो उठा। सर्वत्र परमानन्द की बर्षा होने लगी। सभी देव-देवियाँ चुपचाप उस स्थान पर जल्दी से पहुँचे। शिव गाते गाते जैसे समाधि में चले गये। गन्धर्वों के शरीर पर के जख्मों के निशान ठीक हो गये।

कुछ अप्रत्याशित घटित हो गया। भगवान विष्णु संगीत के प्रवाह में इतने लीन हो गये कि उनके शरीर का ज्योतिर्मय प्रकाश-मण्डल पिघल गया और प्रवाहित होने लगा।

ब्रह्मा ने इसे देख लिया। उन्होंने विष्णु का तरल

प्रकाश-मण्डल अपने कमण्डल में एकत्र कर लिया। यह किसी को ज्ञात नहीं कि वह दुर्लभ पदार्थ वहाँ कब तक रहा। फिर इसे स्वर्ग में नदी के रूप में प्रवाहित कर दिया गया होगा। तत्पश्चात राजकुमार भगीरथ ने इसे पृथ्वी पर उतारा।

"आश्चर्यजनक!" हाथ में समाचार पत्र लिये द्वार पर खड़े श्रीकुमार ने विस्मयपूर्वक कहा। "जब आप कहानी सुना रहे थे, पिता जी! तो मैं समाचार पत्र भूल कर दरवाजे पर खड़ा हो गया। यहाँ तक कि बैठना भी भूल गया। मुझे नहीं मालूम था कि गंगा की उत्पत्ति के पीछे इतनी रोचक कथा होगी।"

प्रो. देवनाथ ने कहा,-"बेटे, जब तुम छोटे थे तब मैं अपना जीवन बनाने और शोध कार्य में इतना व्यस्त था कि मुझे तुम्हें कहानियाँ सुनाने का समय नहीं मिलता था। उस कमी के लिए मुझे दुःख है। तुम्हारे बच्चों को कहानियाँ सुनाकर मैं उसका प्रायश्चित कर रहा हूँ"

"नहीं, नहीं, ग्रैंड पा, हमें कहानियाँ सुनाना प्रायश्चित नहीं हो सकता।" चमेली ने विरोध किया।

"जिस अर्थ में मैंने शब्द का प्रयोग किया है, तुम्हें वैसा ही समझना चाहिए। 'प्रायश्चित' शब्द में क्या दोष है? यह व्यक्ति को पवित्र बनाता है, ऊँचा उठाता है।" ग्रैंड पा ने उत्तर दिया।

"पिता जी! गंगा की उत्पति की कथा प्रतीकात्मक है। मैं ठीक कह रहा हूँ न?" श्रीकुमार ने पूछा।

"तुम ठीक कह रहे हो। इसमें अनेक स्तरों पर प्रतीक के तत्व हैं। भगवान शिव को सभी कलाओं-संगीत, नृत्य आदि का स्रोत माना जाता है। उनमें संगीत अपने शुद्धतम रूप में निवास करता है। संगीत विश्व में व्याप्त आन्तरिक समस्वरता की अभिव्यक्ति है। समस्वरता विषमरसता को समाप्त कर देती है। इसीलिए गन्धर्वों को पुनः अपना सामान्य रूप मिल गया।

"और संगीत की शक्ति का कितना ऊँचा चित्रण करती है यह कहानी!

परिपूर्ण श्रोता संगीत के साथ एकाकार हो सकता है-संगीत के साथ-साथ प्रवाहित हो सकता है। भगवान विष्णु अमर्त्य चेतना हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि गंगा के रूप में उनका पिघला हुआ प्रकाश-मंडल मृतकों को पुनर्जीवित करने में समर्थ हो सका।"

तभी, जब ग्रैंड पा की पुत्र बधू ने याद दिलाया कि नाश्ते का समय हो गया है, वे उठ खड़े हुए।

तावीज और मच्छर

कोहली एक दिन किसी काम से शहर गया। वहाँ राजमार्ग पर एक इमली के पेड़ के नीचे कुछ लोगों की भीड़ लगी थी। उत्सुकतावश वह भी वहाँ चला गया। भीड़ को हटाते हुए जब वह थोड़ा और आगे बढ़ा तो उसने पेड़ के नीचे व्याघ्रछाला पर किसी को बैठा देखा। उसकी लम्बी और सफेद दाढ़ी थी। उसके ललाट पर कुमकुम का बड़ा टीका था। और कंठ में रुद्राक्ष की माला लटक रही थी। देखने में वह एक सिद्ध मंत्रवेत्ता लग रहा था।

भीड़ में आपस में कुछ लोगों की बातचीत से उसे पता चला कि वह मंत्रवेत्ता वहाँ दो दिनों से बैठा है और पाँच रुपये में ऐसा महिमावान तावीज देता है जो सभी प्रकार की समस्या या रोग का निदान कर देता है। यह उसका दावा है। विंध्याचल पर्वत में एक जीर्ण मन्दिर का पुनर्निर्माण करने के लिए ही वह तावीज के बदले पाँच रुपये ले रहा है।

कोहली अपने पिछवाड़े में एक कुआँ खुदवा रहा था। बहुत गहराई तक खुदवाने के बावजूद मीठा पानी नहीं आया। वह कुएँ पर काफी पैसे खर्च कर चुका था। फिर भी उसे निराशा हाथ लगी थी। इसलिए वह परेशान था। तावीज की बात सुनकर उसे कुछ आशा जगी। सोचा, शायद यह मेरी समस्या का भी समाधान कर दे। वह झट पाँच रुपये निकाल कर मंत्रवेत्ता के पास गया।

तभी अचानक एक बूढ़ा बेतहाशा दौड़ता हुआ आया और भीड़ को चीरता हुआ मंत्रविद के पास जाकर बोला, - "महाराज! आपने मच्छर भगाने का यह तावीज यह कह कर दिया था कि कमरे में इसे रखोगे तो मच्छर वहाँ आने का साहस नहीं करेंगे। लेकिन वहाँ तो मच्छरों का ही राज था। मैं एक पल भी न सो सका। आप का तावीज बेकार और बेअसर निकला।"

मंत्रवेत्ता ने उसे सहज और शांत भाव से देखते हुए कहा, - "मैंने जिस प्रकार इसका प्रयोग बताया था, वैसा तुमने नहीं किया होगा। मैंने कहा था न कि तावीज को मच्छरदानी के अन्दर रखना जो तुमने नहीं किया होगा।"

अपकार में उपकार

बहुत पुरानी बात है। भुवनगिरि देश पर राजा हेमशंकर का राज्य था। वह एक कुशल शासक के अतिरिक्त अनेक कलाओं में निष्णात उच्च कोटि का एक कलाकार और कला-संरक्षक था। कला और कलाकरों के पोषण और प्रोत्साहन के लिए उसकी दूर-दूर तक ख्याति फैली थी।

वह प्रतिवर्ष रानी के साथ देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में जाकर ठहरता और वहाँ के प्राकृतिक रमणीय स्थानों और दृश्यों का आनन्द लेता था।

एक साल शरद ऋतु में वह अरुणाचल प्रदेश घूमने गया। दो पर्वतों के बीच स्थित इस प्रदेश की अपूर्व प्राकृतिक सुषमा स्वर्ग को भी मात करती थी। ऊँचे-ऊँचे वृक्ष आकाश को चूमते थे। रंग-बिरंगे पुष्पों की असंख्य पंक्तियाँ इन्द्र धनुष के समान लगती थीं। प्रपातों का कल-कल संगीत वहाँ की नैसर्गिक छटा में चार चाँद लगा रहे थे। वहाँ एक सरोवर भी था जिसमें रंग-बिरंग की मछलियाँ तैरती थीं। शरद ऋतु में विभिन्न प्रजाति के देश-विदेश के प्रवासी-पक्षी आकर बस जाते थे, जिससे वहाँ की शोभा और बढ़ जाती थी।

हेमशंकर वहाँ की सुन्दरता पर मुग्ध हो गया। राजा और रानी दोनों स्थायी रूप से वहीं रह जाना चाहते थे। किन्तु राजधानी लौटना आवश्यक था। इसलिए कुछ दिन वहाँ बिता कर दोनों राजधानी लौट आये।

राजा अपने दरबारी चपल के परामर्श पर ही अरुणाचल गया था। इसलिए राजधानी लौटते ही उसने उसे बुला कर सौ अशर्फियों की भेंट दी।

चपल रोचक और मनोरंजक बातें सुनाने में पटु था। इसलिए राजा उसे बहुत प्यार करता था। वह अरुणाचल का ही निवासी था और नौकरी की खोज में भुवनगिरि आकर बस गया था। उसे अपनी मातृ भूमि की प्राकृतिक सुषमा से बहुत लगाव था। इसीलिए उसने राजा को भी एक बार वहाँ के अलौकिक सौन्दर्य को देख आने के लिए सलाह दी थी।

राजा को भी अरुणाचल की सुन्दरता इतनी पसन्द आई कि वह हरेक के सामने वहाँ के सौन्दर्य

की प्रशंसा करने लगा। राजा से वहाँ की प्रशंसा सुन कर बहुत से लोग अरुणाचल होकर आ गये।

अरुणाचल की विशेषता की चर्चा करते हुए एक दिन चपल ने राजा से कहा,-''यहाँ का सौन्दर्य देखने मात्र से अपने आप कविता फूट पड़ती है।''

''तुमने ठीक कहा, चपल; अरुणाचल को देख कर जो भावनाएँ मेरे मन में उठीं, उन्हें मैंने लिख लिया है। रानी ने उसे पढ़ कर कहा कि वह कविता के समान है। उसने भी उस प्रदेश की रम्यता का वर्णन करते हुए कुछ कविताएँ लिखी हैं।'' हेमशंकर ने मुस्कुराते हुए कहा।

चपल यह सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा,-''प्रभु, आप तो सहज कवि हैं। अरुणाचल के वातावरण में आप की भावनाएँ स्वाभाविक रूप से प्रस्फुटित हो गईं। यहाँ से अरुणाचल जानेवाले अन्य लोगों का भी यही अनुभव होगा और उन लोगों ने भी अपनी भावनाओं को शब्दों में व्यक्त किया होगा। क्यों नहीं आप उन लोगों की एक काव्यगोष्ठी करायें और उनमें जो श्रेष्ठ कवि हो उसे सम्मानित करें।''

चपल को भी कविता रचने और सुनाने का शौक था। वह चाहता था कि काव्य गोष्ठी में उसे अपनी कविता सुनाने का अवसर मिलेगा और उसे ही श्रेष्ठ कवि के रूप में सम्मानित भी किया जायेगा। इसीलिए उसने राजा को एक काव्य गोष्ठी आयोजित करने की सलाह दी थी।

एक बार उसने अपनी कविता आस्थान के कवि चतुरमति को सुनायी थी। उसकी कविता के बारे में चतुरमति ने अपनी राय देते हुए कहा था,-''तुम्हारी कविता में काव्य के गुण नहीं हैं। सुनने वाले तुम्हारा मजाक उड़ायेंगे। लोग तुम्हारी बातों से, बात चीत करने की शैली से अभी प्रभावित हैं। राजा भी तुम्हें बुद्धिमान समझ कर तुम्हारा आदर करते हैं। लेकिन जब वे तुम्हारी कविता सुनेंगे तो हँसेंगे। तुम्हारी कविता उनकी नज़र में तुम्हें छोटा बना देगी।''

लेकिन चपल ने चतुरमति की समीक्षा को ईर्ष्या जनित आलोचना समझ लिया। उसे पूरा विश्वास था कि उसकी कविता उत्तम कोटि की है। इसलिए वह एक ऐसे अवसर की ताक में था जिसमें वह अपनी कविता राजा को सुना सके।

अरुणाचल से भ्रमण कर लौट कर आनेवाले लोगों की काव्य गोष्ठी आयोजित की गई। इसमें भाग लेने की शर्त यह थी कि केवल नये कवि भाग ले सकते हैं। इसमें सुपरिचित और प्रसिद्ध कवि

भाग नहीं ले सकते और कविता का विषय अरुणाचल की प्राकृतिक सुषमा का चित्रण होगा। सर्वश्रेष्ठ कवि को दस हजार अशर्फ़ियों की भेंट देकर सम्मानित करने का निश्चय किया गया।

यह जान कर कि पुराने कवि भाग नहीं ले सकते, अनेक नये कवियों ने उत्साह के साथ भाग लिया। श्रोताओं में भी स्फूर्ति और उत्तेजना थी।

राजा ने आस्थान-कवि चतुरमति को निर्णायक बनाया।

इस पर चपल ने आपत्ति उठाते हुए कहा कि काव्य के महापंडित और उच्च स्तर के कवि होने के कारण चतुरमति शायद नये कवियों की रचनाओं को पसन्द न करें।

आप स्वयं कवि हैं और अरुणाचल की शोभा से परिचित हैं। इसलिए आप स्वयं यह निर्णय करें कि सर्वश्रेष्ठ कवि कौन है। चतुरमति ने इस प्रस्ताव का सहर्ष अनुमोदन किया।

राजा सोच में पड़ गया। अन्त में, उसने अन्तिम निर्णय लेने का अधिकार अपने हाथ में रखा किन्तु कविता के गुण-दोष का विचार और प्राथमिक निर्णय लेने का अधिकार चतुरमति के हाथ में ही छोड़ दिया।

गोष्ठी प्रारम्भ हुई। सामान्य लोगों ने अरुणाचल पर अपनी कविताएँ सुना कर श्रोताओं को चकित कर दिया। चपल ने भी अपनी कविता सुनाई।

गोष्ठी समाप्त होने पर चतुरमति ने कहा,- "राजन! मेरी एक बिनती है। हमलोगों ने साधारण लोगों से असाधारण कविताएँ सुनीं। आशा से कहीं अधिक सुन्दर कविताओं का आस्वादन किया।

यह सचमुच सिद्ध हो गया कि अरुणाचल की हवा में कविता गुनगुनाती है और वहाँ जाने मात्र से कोई सहज ही कवि बन जाता है। लेकिन जो वहीं पैदा हुआ और वहाँ की हवा में सांस लेकर बड़ा हुआ, उसकी तो नस-नस में कविता प्रवाहित होती होगी। इसलिए वह व्यक्ति सुपरिचित और पुराने कवियों की कोटि में माना जायेगा और पूर्व निर्णय और घोषणा के अनुसार उसकी कविता अच्छी होते हुए भी उसे स्पर्द्धा से बाहर माना जायेगा।" चपल ही उन कवियों में ऐसा व्यक्ति था जो अरुणाचल में पैदा हुआ और वहीं पला, बड़ा हुआ था।

राजा चतुरमति की चतुराई पर मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ और उसकी बात से पूरी तरह सहमत हो गया।

घोषणा के अनुसार सर्वश्रेष्ठ नये कवि को दस हजार अशर्फ़ियों की भेंट से सम्मानित किया गया।

अन्य भावपूर्ण और सारगर्भित कविताओं पर भी प्रोत्साहन पुरस्कार दिये गये।

चपल ने समझा कि ईर्ष्या के कारण ही चतुरमति ने उसे बड़ी चतुराई से स्पर्द्धा से बाहर कर श्रेष्ठ कवि के पुरस्कार से बंचित कर दिया। इसलिए वह चतुरमति पर बहुत क्रोधित हो गया और राजा से उसकी शिक़ायत कर उसे दण्ड दिलाने का निश्चय किया।

तभी उसे राजा से तुरन्त मिलने का सन्देश मिला।

चपल से मिलते ही राजा हेमशंकर ने कहा,- "तुम अपनी मनोरंजक और रोचक बातों से मेरा मन बहलाते हो, इसलिए मेरे बहुत प्रिय हो। मैंने इसी कारण एक आवश्यक बात बताने के लिए तुम्हें यहाँ बुलाया है।

"शरीर में इत्र लगाने से उसकी सुगन्ध कुछ देर तक ही रहती है। पुष्प का परिमल भी वृक्ष से अलग हो जाने पर कुछ समय तक ही रह पाता है। अरुणाचल से आनेवालों के साथ भी यही बात लागू होती है। जो लोग वहाँ से अभी-अभी लौटे हैं, उनकी कविताओं में अरुणाचल की सुरभित हवा की सुगन्ध और ताजगी थी। तुमने यद्यपि वहीं जन्म लिया और पले-बड़े हुए, लेकिन अरुणाचल छोड़े बहुत दिन हो जाने के कारण तुम्हारी कविताओं में कुछ भी गन्ध और रस नहीं था। तुम्हारी कविताओं पर पुरस्कार देने का अर्थ था न केवल श्रेष्ठ कवि के साथ अन्याय करना बल्कि श्रोताओं और कविता के पारखियों की नज़र में राजा का पक्षपात पूर्ण निर्णय भी। चतुरमति जानता था कि मैं पक्षपात पूर्ण निर्णय कभी नहीं लूँगा और तुम पुरस्कार के योग्य नहीं होने के कारण अपमानित हो जाओगे।लोगों की नज़र में तुम्हारा सम्मान घट जायेगा।

"मैं यद्यपि श्रेष्ठ कवि का पुरस्कार मेरे प्रिय होने के कारण तुम्हें ही देना चाहता था लेकिन तुम्हारी कविता का स्तर इतना घटिया था कि लोग मेरा भी मजाक उड़ाने लगते। इसलिए मैं भी धर्मसंकट में था।

"चतुरमति ने बड़ी बुद्धिमानी से न केवल तुम्हें अपमानित होने से बचा लिया, बल्कि मुझे भी धर्म संकट से उबार लिया।"

अब चपल ने अनुभव किया कि चतुरमति ने असमर्थ को स्पर्द्धा से हटा कर अपकार नहीं बल्कि उसका बहुत बड़ा उपकार किया है।

कावेरी के किनारे - VII

आखिरी टापू

आलेख : जयंती महालिंगम्
चित्र : गौतम सेन
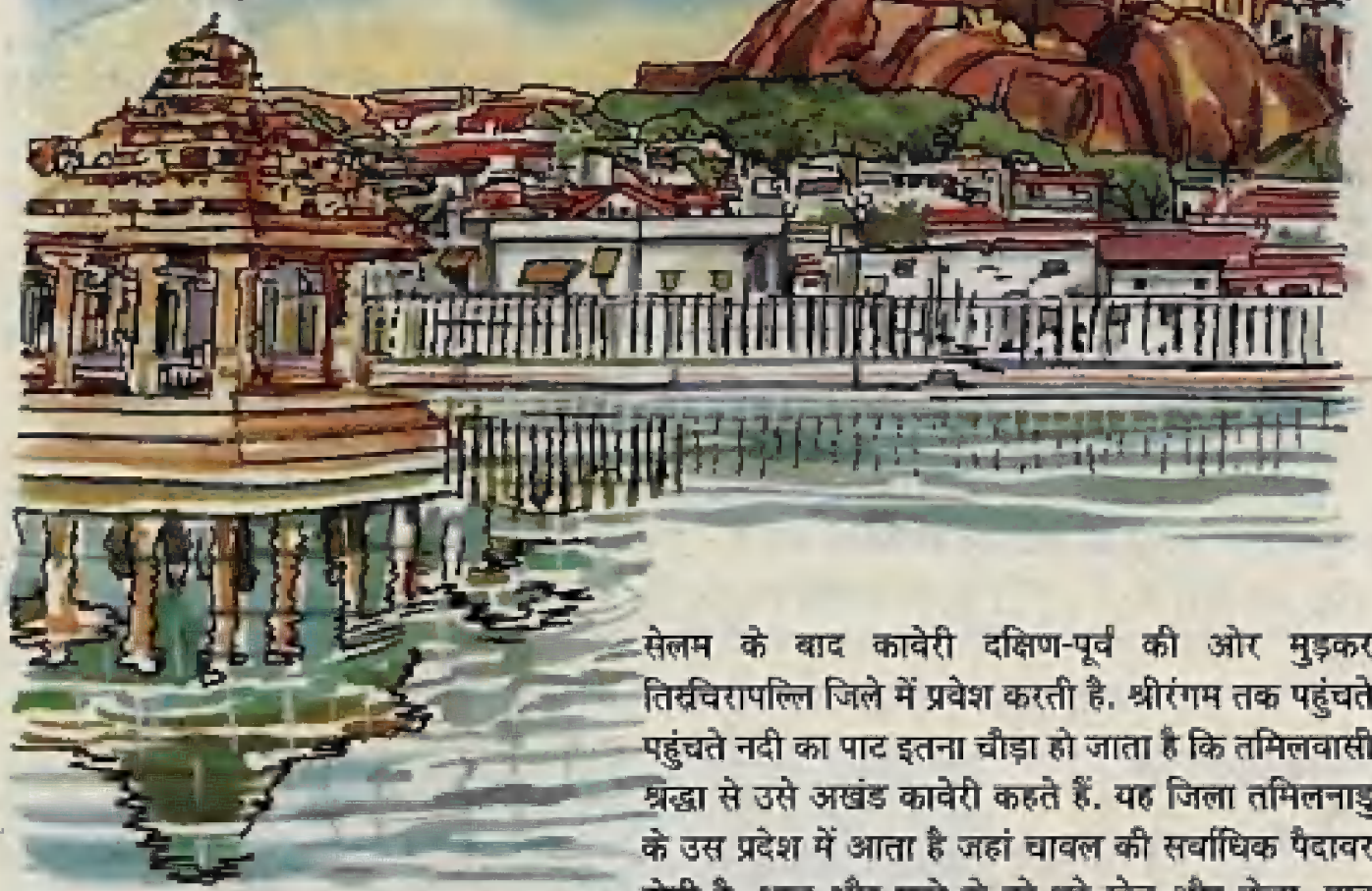
टैप्पकुलम तालाब से शैलदुर्ग और शिखर पर स्थित मंदिर का दृश्य

सेलम के बाद कावेरी दक्षिण-पूर्व की ओर मुड़कर तिरुचिरापल्लि जिले में प्रवेश करती है. श्रीरंगम तक पहुंचते पहुंचते नदी का पाट इतना चौड़ा हो जाता है कि तमिलवासी श्रद्धा से उसे अखंड कावेरी कहते हैं. यह जिला तमिलनाडु के उस प्रदेश में आता है जहां चावल की सर्वाधिक पैदावर होती है. धान और गन्ने के हरे भरे खेत और केला, पान तथा नारियल के बाग नदी के दोनो किनारों पर, जहां तक नजर जाती है, वहां तक फैले हैं.

कहा जाता है तिरुचिरापल्लि का नाम तीन सिर वाले राक्षस त्रिशिरा के नाम पर पड़ा, जो यहां मारा गया था. 344 सीढ़ियों की सीधी चढ़ाई चढ़ने के बाद तिरुचि की पहाड़ी पर स्थित किले के शिखर से पूर्ण कावेरी का भव्य दृश्य देखा जा सकता है. किला 83 मीटर ऊंची प्राकृतिक चट्टान पर बना हुआ है. लोगों का कहना है कि भूगर्भ शास्त्र की दृष्टि से यह चट्टान दुनिया की सबसे प्राचीन, लगभग 380 करोड़ वर्ष पुरानी है. यह किला मूलरूप से चोल राजाओं ने लगभग ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी और ई.सन की दूसरी शताब्दी के बीच उस समय बनवाया था, जब त्रिची शहर उनकी राजधानी था. स्थानीय जनता इसे मलैकोट्टई कहती है. यह किला कई लड़ाइयों का साक्षी रहा है. जिसमें सन् 1751 में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में कर्नाटक की लड़ाइयां भी शामिल हैं. त्रिची का घेरा लगभग 3 वर्ष चलता रहा. अंत में लार्ड क्लाइव की जीत हुई. आजकल यह किला ध्वस्त हालत में है. केवल उसका मुख्य द्वार सही सलामत है.

चोटी पर भगवान गणेशजी का मंदिर है, जिसे उचिपिलैयार कहा जाता है. पहाड़ी से उतार पर नीचे की

शिला पर बना
गणेश-मंदिर

दीवार में अन्य कई मंदिर बनाये गये हैं. इनमें सबसे प्राचीन पल्लव गुफा मंदिर हैं, जिन्हें पत्थर काट कर चट्टान की दक्षिणी दीवार में बनाया गया है. इनमें खुदे हुए लेखों से निस्सन्देह यह सिद्ध होता है कि ये मंदिर पल्लव राजा महेन्द्रवर्मन प्रथम के शासन काल में सन 600 से 630 में बनाये गये थे. इनमें हिन्दुओं के देवी-देवताओं की मूर्तियां हैं और गंगाधर की मूर्ति के नीचे खुदे लेख में कावेरी के सौंदर्य का काव्यात्मक वर्णन मिलता है. यह नदी पल्लव राजाओं को बहुत प्रिय थी और आधिकारिक रूप से भी उन्हीं की थी. नदी का दृश्य बहुत लुभावना है. उसके किनारे के हरियाली और फूलों से भरे मैदान मानों उसके गले का हार हैं.

चट्टान से नीचे आधे उतार पर 100 खंभों वाला शिवजी का मातृभूतेश्वर मंदिर है. यह "तयूमनावर" के नाम से भी मशहूर है. मोटे तौर पर उसका अर्थ है – "जो मां बन गयी." एक कहानी के अनुसार रत्नावती नामक एक गर्भिणी स्त्री अपनी मां की प्रतीक्षा कर रही थी, जो पूमपुहार में रहती थी. लेकिन बाढ़ के कारण वह नदी पार नहीं कर सकी. इसी बीच रत्नावती को प्रसव-वेदना शुरू हो गयी. तब शिव भगवान ने उसकी मां का रूप धारण किया. रत्नावली की मां के त्रिची पहुंचने तक एक सप्ताह तक वे उसकी सेवा करते रहे. इस स्थान पर इसी नाम का एक साधू था, उसने भक्ति रस में पदों की रचना की जो "सिवन सेय्याल" ग्रंथ में संकलित हैं.

त्रिची से लगभग सात किलो मीटर दूर कावेरी दो शाखाओं में बंट जाती है और उसकी धारा में एक टापू बन जाता है. यही श्रीरंगम अथवा अंत्यरंग है. श्रीरंगम में रंगास्वामी (विष्णु) का एक भव्य मंदिर है. इस में विष्णु भगवान आदिशेष शय्या पर टिक कर बैठे हैं. यह मंदिर लगभग तीसरी अथवा चौथी शताब्दी में बनाया गया था. पौराणिक दंतकथा के अनुसार कहा जाता है कि जब विभीषण अयोध्या से लंका वापस जाने लगे तो राम ने उन्हें एक

श्रीरंगम मंदिर का सुनहरा विमान

देवायतन दिया. उसे लेकर जाते समय विभीषण को रास्ते में थकावट महसूस हुई तो वे कावेरी के किनारे आराम करने के लिए लेट गये. नींद से उठने पर उन्होंने देवायतन उठाने का प्रयत्न किया लेकिन वे उसे उठा नहीं सके. तब उन्हें यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह जमीन में जम गया है. वे बड़े जोर से विलाप करने लगे. विभीषण का विलाप सुनकर चोल राजा उनके पास आये और उन्हें शांत करने का प्रयत्न किया. भगवान रंगनाथ स्वयं प्रकट हुए और विभीषण से कहा कि वे पवित्र कावेरी के किनारे पर रहना चाहते हैं. भगवान ने विभीषण को सांत्वना दी कि वे दक्षिण दिशा में लंका की ओर मुंह करके टिक कर विराजमान होंगे. उसके बाद देवायतन के चारों ओर मंदिर बनवाया गया.

श्रीरंगम मंदिर का गोपुर

श्रीरंगम का मंदिर तिरुवरंगम के नाम से भी प्रसिद्ध है. यह भारत का सबसे बड़ा मंदिर है और 6,31,000 वर्ग मीटर में फैला हुआ है. गर्भगृह सात अहातों के बीच में है. बाहरी अहाता 864 मीटर लंबा और 742 मीटर चौड़ा है. बाहरी तीन अहातों में दुकानें और रिहायशी मकान हैं. यह अपने में एक छोटा शहर है जहां की आबादी 10 लाख से अधिक है. 21 गोपुर अथवा बहुमंजिले दरवाजे हैं, जिन पर सुन्दर कलाकृतियां बनी हुई हैं. इनमें एक राज गोपुर है जो दक्षिण भारत का सबसे बड़ा गोपुर है. यह 72 मीटर ऊंचा है. उसके ऊपर से मीलों तक चारों ओर का दृश्य दिखायी देता है. इस तिमंजिले गोपुर के निर्माण का कार्य वास्तव में 18 वीं शताब्दी में शुरू हुआ था, परन्तु अंग्रेजों और फ्रांसीसियों की लड़ाई छिड़ जाने के कारण उसे रोक दिया गया. आखिर वह 1987 में पूरा किया गया. गर्भगृह छोटा है और उसकी लंबाई और चौड़ाई क्रमशः 72 मीटर और 54 मीटर है. इसमें तेल का दीया जलता रहता है जिसका प्रकाश धुंधला होता है. इसलिए जब पुजारी कपूर जला कर आरती करता है, तभी भक्त गणों को भगवान के स्पष्ट दर्शन होते हैं.

मंदिर में बारह अलवारों की मूर्तियां हैं जो प्रसिद्ध वैष्णव संत कवि हो गये हैं. उनके गीतों की खोज करके उनका एक संग्रह तैयार करने का काम वैष्णव संप्रदाय के संस्थापक नाद मुनि ने किया, जो ''नलैयरा प्रबन्ध' के नाम से मशहूर है. उनके शिष्य रामानुजाचार्य एक महान वैष्णव गुरु और दार्शनिक थे. उनकी मूर्ति भी श्रीरंगम मंदिर में है.

चौथे अहाते में वेणु गोपाल कृष्ण का होयसाल शैली का एक सुन्दर मंदिर है. यह शिल्पकला का अनूठा नमूना है. इसलिए यह मंदिर दक्षिण भारत की सबसे सुन्दर कृति माना जाता है. इस मंदिर में भी हजार खंभों का एक दालान (हाल) है, जहां यात्रा-रथ रखा रहता है. खंभों वाला एक और दालान (हाल) भी है जिसका नाम तमिल के मशहूर लेखक कम्बन के नाम पर रखा गया है. इन्हीं कम्बन ने चिरस्मरणीय ''कम्ब रामायण'' लिखी, जिसका प्रथम प्रकाशन यहीं हुआ था.

मदुरै और तंजावूर के नायक शासकों ने अपने शासन काल में श्रीरंगम मंदिर को जमीनऔर धर्मादाय उपहार उदारता पूर्वक दिये. मंदिर का पुनरुद्धार करवाया तथा कई नयी इमारतें बनवाई गयीं. अच्युत अप्पा नायक बड़े उदार वृत्ति के शासक थे और उनके कुशल प्रधान मंत्री गोविन्द दीक्षितर कल्याणकारी कार्यों में उनकी सहायता करते थे. उनके शासनकाल में विमान पर स्वर्ण-पत्र पत्र चढ़ाया गया था. नायकों के शासनकाल में चट्टान पर बने किले की मरम्मत करायी गयी और सैनिक दृष्टि से उसे मजबूत किया गया था.

एक मुसलमान राजकुमारी श्रीरंगनाथ की अनन्य भक्त थी. यहां उसकी मजार देख कर मन में कौतूहल उत्पन्न होता है. वह तुलुक्का नचियार (मुसलमान सेविका) के नाम से मशहूर थी. रंगनाथ को प्रतिदिन चपाती, मक्खन, दूध और हरे चने का भोग लगाया जाता है, उसमें से कुछ भाग मजार पर चढ़ाया जाता है.

दिसंबर-जनवरी के महीनों में वैकुंठ एकादशी के दिन मंदिर में बड़ा उत्सव मनाया जाता है. इस अवसर पर भगवान की शोभायात्रा निकाली जाती है. रथ हजारों भक्तगणों द्वारा खींचा जाता है. इन भक्तगणों में रथ खींचने का सम्मान पाने की होड़ लगी रहती है. मार्च-अप्रैल के महीनों में एक और रथयात्रा निकाली जाती है. यह यात्रा चोल राजाओं की भूतपूर्व राजधानी त्रिची के पास उरैयूर के नचियार मंदिर में समाप्त होती है. यहां भगवान अपनी भार्या से मिलते हैं और नौ दिन तक उत्सव मनाया जाता है. इसमें पुजारियों के दो दलों द्वारा भगवान और भार्या के बीच झगड़ा होने का स्वांग भी रचा जाता है. नये तमिल वर्ष के दिन वार्षिक उत्सव भी मनाया जाता है. मंदिर का कोषाध्यक्ष अपनी विशिष्ट पोशाक में भगवान के सामने उपस्थित होता है. वह गांवों को मालगुजारी पर काल्पनिक काश्तकारों को देने का नाटक करता है. इस प्रकार इस बात की पुष्टि की जाती है कि भगवान रंगनाथ अभी भी जमीन और गांवों के वास्तविक स्वामी हैं और हमेशा रहेंगे.

यद्यपि कावेरी नदी श्रीरंगम टापू को घेरे हुए है फिर भी नदी की दोनों शाखाएं श्रीरंगम के पूर्वी छोर पर आपस में नहीं मिलती हैं. एक शाखा उत्तर की ओर मुड़ जाती है. यह मुख्य सहायक नदी कोलरून अथवा कोल्लीडम के नाम से मशहूर है. जहां कावेरी दो भागों में बंटती है, वहां कलानै अथवा अनैकट्टू नामक अनोखा बांध है. इसे करीब 1600 वर्ष पूर्व चोल राजा, कारीकलान ने बनवाया था.

श्रीरंगम मंदिर के हजार खंभोंवाले दालान की शिल्पकला

शिव का विवाह

शरत चंद्रिका देश के महाराजा चन्द्रसेन और उनकी महारानी चूड़ामणि बहुत दिनों तक संतान न होने के कारण बहुत चिंतित थे। बहुत पूजा-पाठ, यज्ञादि अनुष्ठान तथा ऋषि-मुनियों की सेवा-शुश्रूषा करने के बाद अन्त में एक सुन्दर पुत्री का जन्म हुआ। राज दंपति को पुत्र की चाह थी, इसलिए पुत्री का लालन-पालन उन्होंने पुत्र के समान किया और कालक्रम में पुत्र की कमी वे भूल गये।

राजकुमारी का नाम मधुमित्रा रखा गया। यद्यपि राजमहल में बहुत दासियाँ थीं, किन्तु मधुमित्रा प्रायः सबसे वृद्धा दासी शान्ता के ही साथ रहती।

जब मधुमित्रा पाँच वर्ष की हुई तो उसे अपने साथ खेलने के लिए अपनी आयु के साथी का अभाव महसूस होने लगा और इसलिए वह प्रायः उदास रहने लगी। उसका मन बहलाने के लिए शान्ता उसी की उम्र के बराबर अपने पोते शिव के बारे में कुछ न कुछ बताती रहती। मधुमित्रा बड़े ध्यान से शिव के बारे में सुनती और उतनी देर बहुत प्रसन्न दिखाई पड़ती थी।

एक दिन मधुमित्रा ने शान्ता से कहा, -"कल अपने साथ शिव को भी ले आना धाय माँ। हम दोनों एक साथ खेलेंगे।"

शान्ता मन में डर रही थी कि शिव के अन्तः पुर में लाने से महाराज नाराज हो जायेंगे। फिर भी राजकुमारी की बात वह टाल नहीं सकी और दूसरे दिन अपने पोते शिव को अन्तःपुर में साथ ले आई। इस पर किसी ने आपत्ति नहीं की। मधुमित्रा शिव से मिल कर बहुत प्रसन्न हुई और उसके साथ दिन भर आनन्दपूर्वक खेलती रही। मधुमित्रा को शिव के साथ बहुत प्रसन्न देख कर महाराजा और महारानी भी खुश दिखाई पड़े। अब वह प्रतिदिन राजकुमारी के साथ खेलने लगा।

एक दिन महारानी ने शिव के साथ राजकुमारी को देख कर मन में सोचा कि अब यह बच्ची नहीं रही और अब इसके विवाह के बारे में महाराज को सोचना चाहिए। यह बात उन्होंने महाराज से कही। दूसरे

रामावतार शुक्ला

दिन से शिव का आना बन्द हो गया। और राज दम्पति राजकुमारी के विवाह के विषय में गंभीरतापूर्वक विचार करने लग गया।

शिव का आना अचानक बन्द होने से मधुमित्रा दुखी रहने लगी। और जब दासियों से उसने अपने विवाह की चर्चा सुनी तो उसने शान्ता से कहा,- "धाय माँ, मैं शिव के सिवा और किसी से विवाह नहीं करूँगी। और यदि ऐसा नहीं हुआ तो जीवित नहीं रहूँगी।"

यह सुन कर शांता काँप उठी। उसे ज्ञात था कि राजकुमारी और शिव एक दूसरे से प्यार करते हैं। किन्तु, यह सपने में भी नहीं सोचा था कि राजकुमारी शिव के साथ विवाह के लिए हठ करेगी। यदि ऐसा हुआ तो उसके पोते के लिए अनर्थ हो जायेगा।

शांता को समझ में नहीं आया कि क्या करे। वह अपने किये पर पछताने लगी कि शिव को अन्तःपुर में लाने से ही यह सब हुआ है। फिर भी कुछ सोच-समझ कर उसने राजकुमारी को सलाह देते हुए कहा,- "तब तुम एक काम करो बेटी, महाराज और महारानी से यह कह दो कि अभी तुम विवाह नहीं करोगी। इस बीच कोई उपाय सोचूँगी।

राजकुमारी मधुमित्रा ने शांता की यह बात मान ली।

अपनी दादी से यह समाचार सुन कर शिव के आनन्द की सीमा न रही।

"लेकिन इस क्षणिक आनन्द से तुम्हारी समस्या का समाधान नहीं होगा।" शान्ता ने पोते को समझाते हुए कहा। "तुम्हें राजकुमारी के योग्य बनना होगा। धन और शक्ति अर्जित करनी होगी। इसके लिए बुद्धि-बल का प्रयोग करना होगा। तुम्हें एक राजकुमार से भी अधिक योग्य बनना होगा। इतना योग्य कि महाराज स्वयं तुम्हें राजकुमारी से विवाह के लिए अपनी इच्छा प्रकट करें।"

यह सुन कर शिव गंभीर हो गया और दूसरे दिन सबेरे ही धन, शक्ति और योग्यता प्राप्त करने का संकल्प लेकर घर से निकल पड़ा। चलते-चलते वह एक जंगल में पहुँचा। वहाँ उसकी भेंट एक व्यक्ति से हुई जो हाथ में एक बाजा लिए एक पेड़ के नीचे उदास बैठा था।

शिव के पूछने पर अपना परिचय देते हुए उसने कहा, -"मैं राग हूँ। मैंने एक लम्बे अरसे तक गुरु की सेवा की। उन्होंने मुझे यह बाजा दिया। इसे बजाने पर विकृत स्वर निकलते हैं जिसे सुनकर सिरदर्द हो जाता है। जो भी यह बाजा सुनता है, मुझे मार-पीट कर भगा देता है। यह बाजा मेरे लिए

निरर्थक सिद्ध हुआ।"

"धीरज रखो। बुद्धि का प्रयोग करके इससे लाभ उठा सकते हैं। मेरे साथ चलो।" उसका हौसला बढ़ाते हुए शिव ने कहा और उसे अपने साथ लेकर वह आगे बढ़ा।

थोड़ी दूर आगे जाने पर एक ऐसा व्यक्ति मिला जो अपना सिर गीली मिट्टी में डाल कर शीर्षासन कर रहा था। जब उसने सिर बाहर निकाला तो शिव ने पूछा, "तुम कौन हो और मिट्टी में सिर क्यों डाल रहे हो?"

"मेरा नाम नेत्र है और पृथ्वी के गर्भ में छिपे धन को देख रहा हूँ।" उसने कहा।

शिव ने आश्चर्य से फिर पूछा,-"क्या कुछ दिखाई पड़ा?"

"हाँ, मैंने साफ देखा कि लगभग सौ फुट की गहराई में अतुल सोना भरा पड़ा है। लेकिन मैं अकेला इसे खोद कर निकाल नहीं सकता।" नेत्र ने दुखी होते हुए कहा।

"चिंता मत करो। सब ठीक हो जायेगा। लेकिन यह बताओ कि यह शक्ति तुम्हें कैसे प्राप्त हुई?" उसे सान्त्वना देते हुए शिव ने पूछा।

"एक मुनि एक वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न थे। तभी उन पर एक बाघ झपटा। मैंने अपनी तलवार से बाघ को मार डाला। मुनि ने प्रसन्न होकर मुझे यह दिव्य दृष्टि प्रदान की।

"चिंता त्याग दो और मेरे साथ चलो। समय आने पर सब ठीक हो जायेगा।" शिव ने यह कह कर नेत्र को भी अपने साथ कर लिया।

आगे जाने पर उन्हें एक शिकारी दिखाई पड़ा। उसके हाथ में एक छोटा-सा खिलौना-धनुष था। वह एक पेड़ के नीचे बैठ कर कुछ सोच रहा था।

शिव ने उससे कहा, - "बच्चों के इस खिलौना-धनुष से तुम क्या करते हो? इससे तो चिड़िया भी नहीं मार सकते।"

"यह बच्चों के खेलने का नहीं, बल्कि अद्भुत शक्तिवाला दिव्य सचेतन धनुष है। बलवान से बलवान शत्रु को भी यह क्षण भर में धराशायी कर सकता है। बस, केवल लक्ष्य पर संकल्प के साथ चित्त को एकाग्र करके देवी का ध्यान कर बाण छोड़ना पड़ता है।" शिकारी ने धनुष की महिमा बताते हुए कहा।

"लेकिन तुम्हें यह दिव्यास्त्र कैसे प्राप्त हुआ और तुम्हारा नाम क्या है? शिव ने पूछा।

शिकारी ने अपना परिचय देते हुए कहा,-"मेरा नाम बल है। एक मांत्रिक धोखे से मासूम लोगों को फंसा कर दुष्ट शक्तियों की सिद्धि के लिए उनकी बलि चढ़ा देता था। मैंने उसे धोखा देकर देवी के

कहा, -"यह बाजा प्राण घातक है। यह तुम्हें कहाँ से मिला? इसे फौरन बन्द कर दो। मैं तेरे पाँव पड़ता हूँ। मैं अब तुम्हें नहीं खाऊँगा। और जो कहोगे वहीं करूगाँ।"

शिव ने बाजा बन्द कर राक्षस को सोने की खान का स्थान दिखाया और उसे खोद कर सोना निकालने के लिए कहा। राक्षस ने अपनी पूरी शक्ति लगा कर वहाँ की खान का सारा सोना बाहर निकाल दिया।

शिव तब अपने मित्रों के साथ सारा सोना लेकर राजा से मिला और उन्हें भेंट देते हुए कहा कि आवश्यकता पड़ने पर प्रजा के कल्याण के लिए हम और सोने की भेंट दे सकते हैं।

राजा चन्द्रसेन ने शिव से प्रसन्न होकर उसे राजकीय सम्मान दिया और राज भवन के विशिष्ट अतिथि गृह में मित्रों के साथ उसके रहने का प्रबन्ध कर दिया।

चरणों में उसी की बलि चढ़ा दी। देवी ने प्रसन्न होकर यह दिव्य धनुष मुझे प्रदान किया। लेकिन मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि इसका उपयोग कैसे करूँ। यही मैं सोच रहा हूँ।"

"चिंता न करो और मेरे साथ चलो।" यह कह कर शिव ने बल को भी अपने साथ ले लिया। अब शिव, राग, नेत्र और बल चारों आगे बढ़े।

थोड़ी दूर और जाने पर उन्हें कठोर कर्ण नाम का एक नरभक्षी राक्षस मिला। वह उस मार्ग से जाने वाले मनुष्यों को निगल जाता था। शिव और उसके साथियों को देख कर वह खुशी से चीख पड़ा और उनकी ओर लपका।

शिव ने झट राग से बाजा ले लिया और जोर-जोर से बजाने लगा। उसकी कर्णकटु आवाज के कारण राक्षस का दर्द से सिर फटने लगा। शिव बाजा बजाता रहा। राक्षस ने दर्द से छटपटाते हुए

तभी राजा चन्द्रसेन के पास पड़ोसी राजा श्रीचन्द्र से एक विचित्र प्रस्ताव आया। वहाँ के दूत ने यह संवाद लाया कि राजा चन्द्रसेन अपनी राजकुमारी मधुमित्रा के साथ उसके एकलौते बेटे के साथ विवाह का प्रस्ताव स्वीकार करे, नहीं तो वह एक सौ हाथियों, दस हजार घुड़सवारों और पचास हजार पैदल सैनिकों के साथ शरत चन्द्रिका देश पर आक्रमण कर देगा।

यह संवाद सुन कर राजा चन्द्रसेन बहुत घबरा गये। वे न तो श्रीचन्द्र के बेटे से मधुमित्रा का विवाह करना चाहते थे और न वे उसकी विशाल सेना का सामना करने की स्थिति में थे। उसका बेटा बिलासी, दुराचारी और अयोग्य था और मधुमित्रा के योग्य नहीं था। दूसरी ओर इसके पास इतनी सेना नहीं थी, इसलिए युद्ध करना भी संभव नहीं था। राजा

किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये।

महाराज चन्द्रसेन ने यह बात रानी और मधुमित्रा को भी बताई। मधुमित्रा से राजा की यह परेशानी शिव को भी मालूम हो गई।

शिव एकान्त में राजा से मिला और बोला- "महाराज! ऐसी अपमान जनक स्थिति में कोई भी प्रतिष्ठित राज्य अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए युद्ध ही स्वीकार करेगा चाहे परिणाम कुछ भी हो। प्रतिष्ठा के साथ युद्ध में मृत्यु का आलिंगन करना अपमानित जीवन से, चाहे वह कितना ही सुखकर क्यों न हो, लाख गुना श्रेयस्कर होता है। इसलिए चिन्ता छोड़ कर युद्ध की तैयारी कीजिए और उसके दूत से युद्ध की स्वीकृति का सन्देश भेज दीजिए।"

"पड़ोसी राजा दुष्ट है, आसुरिक है -यह उसके संवाद से स्पष्ट है। इसीलिए उसका बेटा भी लम्पट, बिलासी और दुराचारी निकल गया। मेरे मित्र बल के पास दुष्ट शक्तियों का संहार करनेवाला एक दिव्य धनुष है। मुझे विश्वास है इस दिव्य धनुष की सहायता से दुष्ट शक्तियाँ, चाहे वे कितनी ही विशाल हों, अवश्य पराभूत हो जायेंगी।

"आप अपनी सेना को, चाहे वह कितनी ही छोटी हो, मेरे साथ भेज दीजिए और आप राज भवन में निश्चिंत रहिए।"

शिव राजा की थोड़ी-सी सेना और अपने मित्रों को लेकर युद्ध के लिए चल पड़ा।

शिव के हाथ में छोटे धनुष को देख कर हाथी पर सवार श्री चन्द्र ठठाकर हँसा और बोला,-"अरे मूर्ख, बच्चों के खेलने का धनुष लेकर यहाँ क्यों आये हो? यह खेलने का नहीं, लड़ाई का मैदान है।"

शिव ने तभी मन को शान्त कर देवी का ध्यान किया और एकाग्र चित्त होकर श्री चन्द्र के हृदय-स्थल को अपना लक्ष्य बनाया और बाण छोड़ दिया।

बाण श्रीचन्द्र के हृदय में प्रवेश कर गया। वह इस अप्रत्याशित आघात से तत्क्षण हाथी से नीचे गिर पड़ा और स्वर्ग सिधार गया। राग ने शत्रु सेना में घुस कर अपना बाजा बजाना शुरू कर दिया। कठोर कर्ण भागते शत्रु सैनिकों को पकड़-पकड़ कर निगलने लगा। युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व ही श्रीचन्द्र की सेना में भगदड़ मच गई। 'शिव की जय' का नारा सर्वत्र गूंजने लगा। युद्ध में श्रीचन्द्र का बेटा भी मारा गया।

राजा चन्द्रसेन ने बड़ी धूम-धाम से मधुमित्रा का विवाह शिव के साथ कर दिया और उन्हें दहेज में जीता हुआ पड़ोसी राज्य दे दिया। शिव ने अपने मित्रों को अपना मंत्री बनाया और शिवसेन के नाम से प्रसिद्ध राजा हुआ।
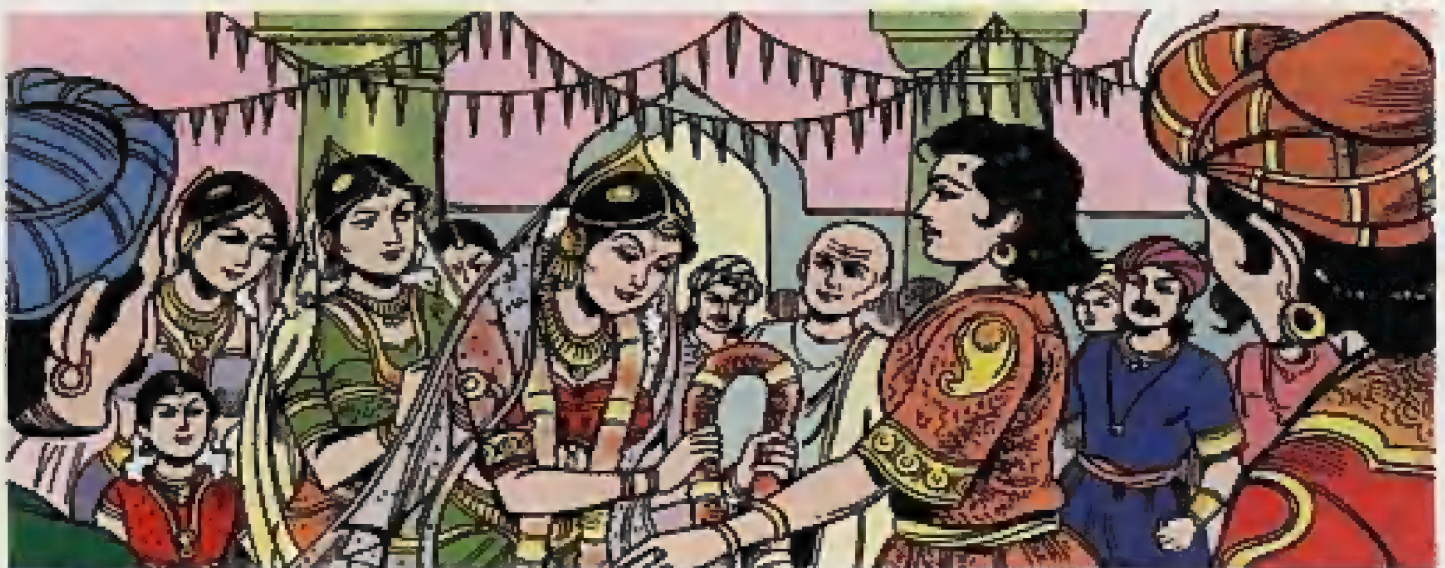
सर्जनात्मक स्पर्द्धाएँ

इस स्तम्भ में मुहावरों को केन्द्रीय भाव बना कर कहानी लिखने का एक नमूना बाल-पाठकों के मार्ग-दर्शन के लिए यहाँ दिया जा रहा है।

ये अंगूर खट्टे हैं!

एक गाँव में रामनाथ नाम का एक व्यापारी रहता था। गाँव में उसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। उसकी एक विवाह योग्य सुन्दर बेटी थी-सुकन्या। गाँव में रहने के कारण वह अधिक पढ़-लिख नहीं पायी लेकिन घर-गृहस्थी के काम में बहुत चतुर थी। रामनाथ और उसकी पत्नी दमयन्ती उसके विवाह के लिए चिन्तित थे।

रामनाथ का एक मित्र श्यामसुन्दर जो पहले उसी गाँव में रहता था अपना व्यापार बढ़ाने के लिए शहर में बस गया था। उसका बेटा मनोहर डॉक्टर बन कर नौकरी करने विदेश चला गया।

"तुम्हारे मित्र श्यामसुन्दर के बेटे की अभी तक शादी नहीं हुई है। सुना है कि वह भी उसके लिए योग्य कन्या की तलाश कर रहा है। तुम क्यों नहीं उसी से बातचीत चलाते। लड़का होनहार है। डॉक्टर है। विदेश में नौकरी कर रहा है। ऐसा लड़का तो चिराग लेकर ढूंढने से भी नहीं मिलेगा। हो सकता है, बात बन जाये। लड़का-लड़की एक दूसरे को बचपन से जानते भी हैं।" दमयन्ती ने रामनाथ को रात में चिन्तित देख कर सलाह दी।

रामनाथ को बात जँच गयी। वह सवेरे उठ कर श्यामसुन्दर से मिलने शहर चला गया। श्यामसुन्दर एक दिन लड़की को देखने गाँव आया। उसे लड़की अच्छी लगी। लेकिन वापस घर जाने पर उसकी पत्नी ने कहा,-"क्या गाँव की लड़की मनोहर के साथ विदेश जाकर रह पायेगी? उसे तो काफी पढ़ी-लिखी शहरी लड़की चाहिए। देख लो, बाद में कहीं वह छोड़-छाड़ न दे। ऐसा हुआ तो बिरादरी में नाक कट जायेगी।"

फिर दोनों ने सलाह कर के रामनाथ को यह पत्र लिख दिया कि लड़का अपनी मर्जी से विदेश में ही शादी करना चाहता है। इसलिए यह रिश्ता उसे मंजूर नहीं है।

यह सुन कर रामनाथ का हृदय बैठ गया। वह काफी चिंतित रहने लगा। गाँव वालों को भी कानोंकान भनक मिल गई थी कि उसकी लड़की की शादी श्यामसुन्दर के लड़के से होने जा रही है। अब वह गाँव वालों से क्या कहेगा? क्या मुँह दिखायेगा?

सुकन्या भी यह जान कर खुश थी कि उसका विवाह मनोहर से होगा और उसके साथ वह विदेश में रहेगी। यह खबर सुन कर उसके हृदय को भी बहुत धक्का लगा। लेकिन पिता को काफी चिंतित और परेशान देख कर उसने कहा, -"यह तो अच्छा हुआ पिता जी, कि उनलोगों ने मना किया। नहीं तो मैं कहने वाली थी कि मनोहर से विवाह नहीं करूँगी। जो इनसान रोटी के लिए माता समान अपनी मातृभूमि छोड़ सकता है, वह कल अपने माँ-बाप और पत्नी को भी तो छोड़ सकता है। इसलिए यह चिन्तित होने की नहीं, बल्कि खुश होने की बात है। इसे आप भगवान की कृपा समझ लीजिए।"

"हाँ बेटे, ये अंगूर खट्टे हैं।" पिता ने अपनी छाती के दर्द को दबाते हुए और आह भरते हुए कहा।

महाभारत

पांडवों की सेनाएँ कुरुक्षेत्र में प्रवेश करते ही सैनिक-शिबिरों का निर्माण करने के लिए अनुकूल प्रदेश को ढूँढा गया। वहाँ पर घास, लकड़ी और पानी का अच्छा प्रबंध था। उसके समीप कहीं श्मशान, मंदिर तथा ऋषियों के आश्रम न थे। कृष्ण और अर्जुन ने अनेक राजाओं को साथ ले रथ पर शिबिर-निर्माण का सारा प्रदेश घूमकर देखा। कुछ स्थानों पर जहाँ-तहाँ दलों में इकट्ठे हुए कौरव सैनिक बैठे थे। कृष्ण ने उन्हें खदेड़ दिया।

धृष्टद्युम्न, सात्यकी तथा युयुधान ने शिबिरों के निर्माण के हेतु माप कराये। हिरण्वती नदी के तट पर पांडवों के शिबिर निर्मित हुए। उनके चारों तरफ़ कृष्ण ने बड़ा कंदक खुदवाया। पांडवों के शिबिर जैसे अनेक शिबिर अन्य राजाओं के लिए भी बनाये गये। सभी शिबिरों में भोजन तथा जल के सारे प्रबंध किये गये। सेना के साथ कई हज़ार शिल्पी और वैद्य भी थे। कवच, आयुध, शहद, घी, धूप इत्यादि के पहाड़ों जैसे ढेर लगाये गये। युधिष्ठिर ने हर एक शिबिर में जाकर इस बात की जाँच की कि सारे इंतज़ाम ठीक से किये गये हैं या नहीं। पांडवों के द्वारा निर्मित शिबिरों का समाचार सुनकर उनके मित्र राजा अपने दल-बल के साथ आ पहुँचे।

उधर कृष्ण के हस्तिनापुर से निकलते ही दुर्योधन ने कर्ण, शकुनि तथा दुश्शासन को बुलाकर कहा,- "कृष्ण तो यही चाहते हैं कि मेरे तथा पांडवों के बीच युद्ध हो! वे पांडवों को मेरे विरुद्ध उकसायेंगे। हमें भारी पैमाने पर युद्ध की तैयारियाँ करनी होंगी। इसलिए तुम लोग बड़ी सतर्कता के साथ युद्ध की तैयारियाँ करके कुरुक्षेत्र में शिबिरों का निर्माण कराओ। हमें खाद्य पदार्थ जिन मार्गों के द्वारा प्राप्त होते हैं, वे मार्ग शत्रु के अधीन में न आयें, इसके

लिए आवश्यक जबर्दस्त पहरा बिठाना होगा। शिविरों में आवश्यक सामग्री के साथ आयुध भी पूर्ण रूप से उपलब्ध हों। लाखों की संख्या में पताकाएँ और ध्वजाएँ तैयार करवा दो। शिविरों के बीच के मार्ग समतल बनवा दो। कल ही सेना यहाँ से रवाना हो शिविरों में पहुँच जायें।"

कौरवों के शिविर भी तैयार हो गये। हस्तिनापुर सैनिकों के कोलाहल से भर उठा। कौरवों की सेनाएँ भी अपने शिविरों में पहुँच गईं।

कौरवों को मारने के लिए सारे प्रयत्न हो चुकने के उपरांत अन्त में युधिष्ठिर चिंता में पड़ गया। उसने कृष्ण से कहा,- "हे कृष्ण! हम जो प्रयत्न करने जा रहे हैं, क्या वे धर्म के विरुद्ध नहीं हैं? हम अपने ही सगे-सम्बन्धियों, भाइयों, पितामहों को मार कर अपने वंश का सर्वनाश करने जा रहे हैं। क्या यह धर्म के अनुकूल है? फिर इस नर-संहार में कितने ही निर्दोष व्यक्तियों के प्राण जायेंगे, कितनी ही नारियाँ अबला हो जायेंगी, कितनी ही माँओं की गोद सूनी जायेगी? इस पर धर्मनीति क्या कहती है?"

इस पर कृष्ण ने उत्तर दिया,- "हमें राज्य का हिस्सा न दे तो हम कौरवों के साथ समझौता नहीं कर सकते। ऐसी हालत में युद्ध अनिवार्य हो जाता है। यदि यह युद्ध नहीं हुआ तो अधर्म और अन्याय बढ़ेगा। अत्याचार और पाप पढ़ेगा। यह युद्ध धर्म और न्याय की रक्षा के लिए है। यह धर्म युद्ध है। यह अनिवार्य है।"

कृष्ण के मुँह से ये बातें सुनने के उपरांत युधिष्ठिर ने युद्ध की घोषणा कर दी। इससे सेनाओं के बीच उत्साह पैदा हो गया।

इसके बाद युधिष्ठिर ने भीम एवं अर्जुन से कहा- "हमने अपने वंश का विनाश होने से रोकने के लिए बनवास और अज्ञातवास भी किये, असंख्य यातनाएँ भी झेलीं। लेकिन कौरवों ने हमारी भावनाओं का, अपने वंश को बचाने की हमारी कामनाओं का कभी आदर नहीं किया। बल्कि वे इसे हमारी दुर्बलता ही समझते रहे। हमने उसके हर छल-कपट और दुष्ट भावनाओं को भुलाने की कोशिश की लेकिन सब व्यर्थ गया। लगता है, वंश का विनाश अब निकट आ गया है। वंश की रक्षा के लिए हमने जो प्रयत्न किये, वे सब विफल हो गये। परंतु वंश के विनाश के लिए हम जो प्रयत्न करने जा रहे हैं, वे सफल होने जा रहे हैं, यह बात निश्चित है। मेरी समझ में यह नहीं आता कि हम अपने गुरु जनों तथा वृद्धजनों का बध करके कैसी विजय प्राप्त करनेवाले हैं?"
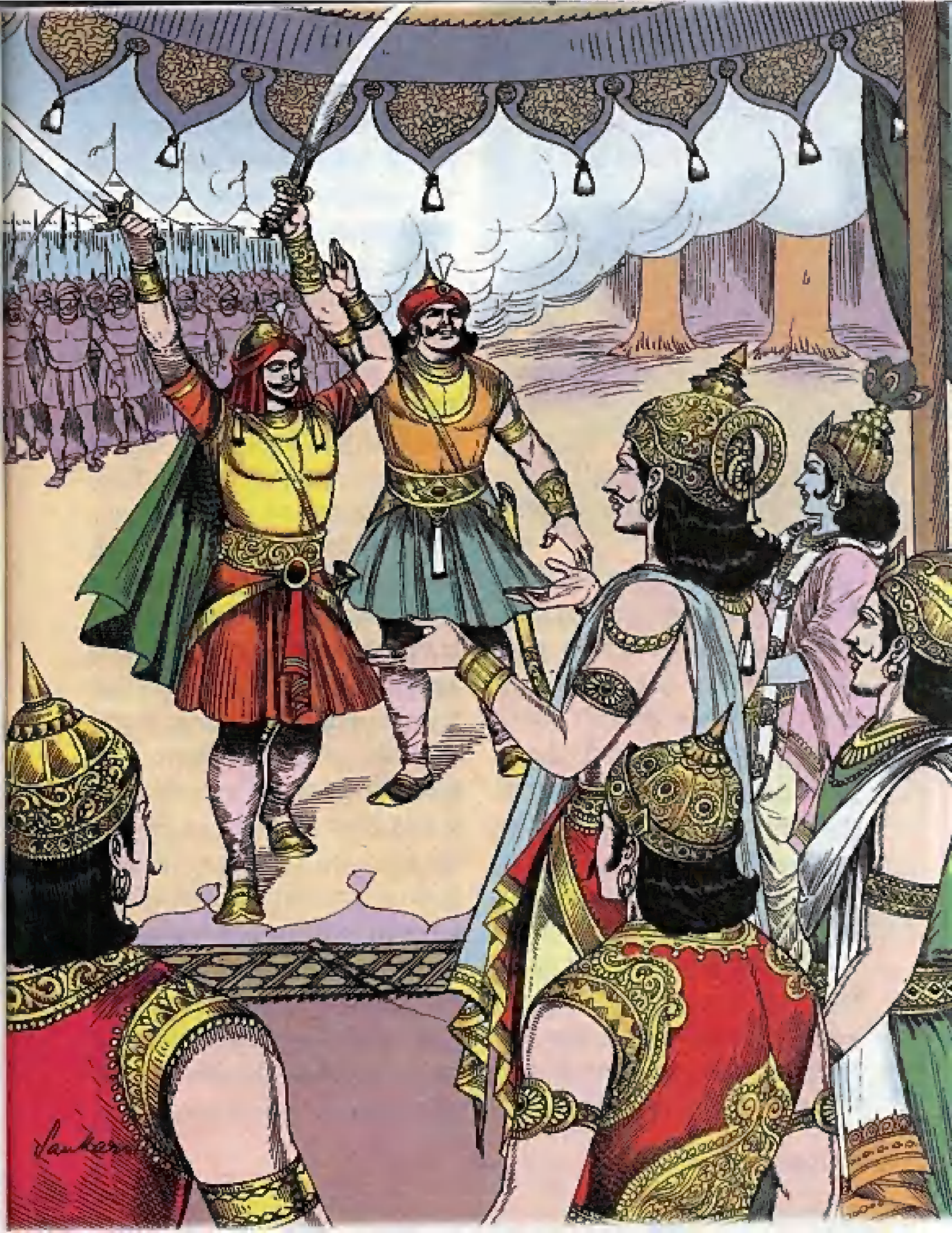
"हमारी माता तथा बिदुर ने हमें जो हित की बातें बतायीं, उनसे बढ़कर दूसरा कौन धर्म है! द्रौपदी के अपमान का बदला लेने से बड़ा धर्म और कौन-सा है? हमारे मार्ग दर्शक कृष्ण के आदेश से बढ़ कर और कौन धर्म है? अधर्म और अत्याचार को मिटाने से बड़ा धर्म और क्या हो सकता है? युद्ध क्षेत्र में सेनाएँ जब आमने-सामने खड़ी हों- तो उस समय युद्ध से बड़ा धर्म क्षत्रिय के लिए और क्या हो सकता है। अतः युद्ध अनिवार्य है।" भीम और अर्जुन ने एक स्वर में कहा। कृष्ण ने उनके विचार का समर्थन किया।

दूसरे दिन दुर्योधन ने अपने पक्ष में लड़ने के लिए आयी हुई ग्यारह अक्षौहिणियों की सेना का उनकी सामर्थ्य के अनुसार विभाजन किया। उसने उत्तम सेनाओं को आगे, मध्यम शक्तिवाली सेनाओं को मध्य भाग में तथा दुर्बल सेनाओं को पीछे खड़ा करने का प्रबंध किया। टूटे हुए रथों की मरम्मत करने के लिए लाखों की संख्या में लकड़ियाँ तैयार रखी गयीं। सभी रथों में तूणीर एवं बाण रखे गये। तरह-तरह के आयुध, तैल एवं अन्य सामग्री इकट्ठी की गयी।

इसके बाद दुर्योधन ने अपनी ग्यारह अक्षौहिणियों के लिए ग्यारह सेनापतियों को नियुक्त किया। वे थे-कृपाचार्य, द्रोण, शल्य, सैंधव, सुदक्षिण, कृतबर्मा, अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवसु, शकुनी और बाह्लिक।

भरी सभा में इस प्रकार अक्षौहिणी पतियों को नियुक्त करने के पश्चात दुर्योधन ने भीष्म की ओर मुड़कर करबद्ध प्रणाम किया और कहा,- "महात्मन, चाहे बड़ी से बड़ी सेना ही क्यों न हो, योग्य सेनापति के अभाव में वह चींटियों की बांबी की भाँति छितर जायेगी। विभिन्न सेनापतियों के बीच स्पर्धा होगी, पर मैत्री न होगी। प्राचीन काल में हैहय क्षत्रियों पर ब्राह्मणों ने युद्ध की घोषणा की। उनके साथ रहकर वैश्य तथा शूद्र बंशियों ने भी हैहयों के साथ युद्ध किया। अनेक युद्ध होने पर भी अल्प संख्यावाले हैहयों की बिजय होती गयी। इसका कारण यह है कि हैहयों का एक ही समर्थ नेता था। लेकिन शेष तीनों वर्णों की सेना के अनेक नेता थे। इस रहस्य का पता लगाकर ब्राह्मणों ने एक समर्थ व्यक्ति को नेतृत्व प्रदान कर हैहयों पर विजय प्राप्त की। आप नीतिशास्त्र में शुक के समान हैं। हमारे हितैषी हैं, धर्मात्मा हैं, अजेय हैं। इसलिए आप मेरी सारी सेनाओं का अधिपति बन जाइये और जैसे इन्द्र ने देवताओं की रक्षा की, वैसे आप हमारी रक्षा कीजिये।"

दुर्योधन की सारी सेनाओं का सेनापति बनने के लिए भीष्म ने दो शर्तें रखीं: एक-पांडवों में से किसी का मैं वध नहीं कर पाऊँगा। और दूसरा यह कि कर्ण जब तक युद्ध क्षेत्र में रहेगा, मैं युद्ध नहीं करूँगा, क्योंकि कर्ण मुझसे ईर्ष्या करता है। इसलिए या तो पहले कर्ण युद्धक्षेत्र में आये या मैं।

भीष्म के मुँह से ये बातें सुनकर कर्ण ने दुर्योधन को आश्वासन देते हुए कहा-"राजन, भीष्म के जीवित रहते मैं युद्धक्षेत्र में क़दम नहीं रखूँगा।"

इसके बाद दुर्योधन ने शास्त्रविधि से भीष्म को प्रधान सेनापति के रूप में अभिषेक किया। तब उसके साथ, उसके भाई तथा सेनाएँ भी कुरुक्षेत्र की ओर चल पड़ीं।

बलराम ने सुना कि युद्ध प्रारंभ होनेवाला है, इसलिए कुछ यादव वीरों को साथ ले वह पांडवों के शिविर में आया। सभी राजाओं, पांडवों तथा कृष्ण ने भी उठकर सादर उसका स्वागत किया। बलराम ने राजा विराट, द्रुपद इत्यादि को नमस्कार किया। तब एक आसन पर बैठकर यों कहा,- "शीघ्र ही महान भयंकर युद्ध और प्रजा का विनाश होनेवाला है। इसके टलने का कोई उपाय नहीं दिखता। मैं इस बात की कामना करता हूँ कि इस युद्ध में आप सब लोग प्राणों के साथ बिकलांग हुए बिना बच निकलें। हमारे लिए पांडव जैसे रिश्तेदार हैं, वैसे कौरव भी हैं। मैंने कृष्ण से अनेक बार बताया कि दोनों पक्षों के लोगों को समान दृष्टि से देखें। मगर कृष्ण अर्जुन को प्राणों से भी अधिक चाहता है। इसलिए उसने मेरी बात नहीं मानी। भीम और दुर्योधन दोनों मेरे प्रिय शिष्य हैं। दोनों ने मेरे यहाँ गदा-युद्ध का प्रशिक्षण लिया। इस युद्ध में कृष्ण की सहायता से पांडव अवश्य बिजयी होंगे। मगर मैं कौरवों का विनाश देख नहीं सकता। इसलिए मैं सरस्वती नदी के तट पर स्थित तीर्थस्थानों का सेवन करने जा रहा हूँ।"

यों कहकर बलराम चला गया। उसी समय रुक्मिणी का भाई रुक्मि एक अक्षौहिणी सेना के साथ पांडवों के पास आया। युधिष्ठिर के द्वारा अतिथि-सत्कार पाने के बाद उसने भरी सभा में अर्जुन से कहा,-"अर्जुन, इस युद्ध में तुम्हें मेरी सहायता की ज़रूरत हो तो बताओ। मैं तुम्हारे शत्रुओं का समूल नाश कर दूँगा। मेरे पराक्रम के सामने कोई टिक नहीं सकता। इन सभी राजाओं को यहाँ से हिलने तक की ज़रूरत नहीं है। कृपाचार्य तथा द्रोणाचार्य का बध करके मैं तुम्हारा राज्य तुम्हें वापस दिला दूँगा।"

इसके उत्तर में अर्जुन ने हँसते हुए कहा,-"हे वीरवर, युद्ध का नाम सुन कर मेरे डरने का कोई सवाल ही नहीं उठता। मैंने बिना किसी की सहायता के गंधर्वों से दुर्योधन की रक्षा की। खांडव वन का दहन कराया। कौरवों की सेनाओं से विराट की गायों को छुड़ाया। तुम यदि मदद करना चाहते हो तो और किसी की करो। नहीं तो, हमारे साथ रहकर यह देखो कि मैं कैसे युद्ध करता हूँ!"

इसके बाद रुक्मि अपनी भारी सेना को लेकर दुर्योधन के पास गया और इसी तरह अपनी आत्म-प्रशंसा की। दुर्योधन ने भी रुक्मि की सहायता लेने से अस्वीकार कर दिया। तब रुक्मि अपनी सेना के साथ अपने देश लौट गया।

इस प्रकार बलराम और रुक्मि कुरुक्षेत्र के युद्ध में शामिल नहीं हुए। बाकी सब राजाओं ने किसी न किसी पक्ष से युद्ध किया।

उधर हिरण्वती नदी के तट पर शिविर में रहनेवाले पांडवों के पास दुर्योधन ने शकुनि के पुत्र उलूक को अपने दूत के रूप में भेजा। उसके द्वारा उसने युधिष्ठिर, कृष्ण, भीमार्जुन तथा नकुल-सहदेव के पास दंभपूर्ण संदेश भेजाः

"युधिष्ठिर, तुम रुद्राक्ष धारण की हुई बिल्ली के समान हो! तुम्हारा जाप बिलाव जाप है। दुनिया को धोखा देने के लिए तुमने वेदों तथा सहनशीलता को अपनाया है। अब भी सही, क्षात्र धर्म का अनुसरण करके युद्ध करो। तुमने केवल मुझ से पाँच गाँव माँगे, लेकिन पाँच गाँव देने से अस्वीकार करते हुए मैंने तुमको युद्ध के लिए प्रवृत्त किया, इसलिए तुम युद्ध करो।

"हे कृष्ण, तुमने हमारी सभा में कोई जादू करके एक विचित्र रूप दिखाया। उसी रूप में तुम युद्धक्षेत्र में मेरे सामने आ जाओ। योद्धा ऐसी माया को देख क्रुद्ध होते हैं किंतु डरते नहीं। तुमने डींग मारी कि युद्ध में पांडवों को विजयी बनाकर उन्हें अपना राज्य वापस दिलाओगे। तुम अपनी इस बात का पालन करो।

"भीम, तुम पेटू हो, युद्ध करने के योग्य नहीं हो। मैंने अपने प्रताप से तुमको राजा विराट का रसोइया बनाया। तुमने प्रतिज्ञा की कि धृतराष्ट्र के सभी पुत्रों को युद्धक्षेत्र में पराजित करोगे। उस प्रतिज्ञा की रक्षा करो।"

इसी प्रकार दुर्योधन ने अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा धृष्टद्युम्न के पास संदेश भेजे। उलूक ने उन्हें पांडवों के शिविर में सुनाये। दुर्योधन के सन्देश सुनकर सब लोग क्रोध में आ गये। तब उन लोगों ने उलूक से कहा, - "तुम जाकर दुर्योधन से कहो कि

वह हमें युद्ध करने के लिए भड़का रहा है। उसकी इच्छा की अवश्य पूर्ति होगी।"

उलूक को भेजने के पश्चात युधिष्ठिर तथा धृष्टद्युम्न ने अपनी सेनाओं को युद्धक्षेत्र में पहुँचाया। वहाँ पर धृष्टद्युम्न ने अपने वीरों को इस प्रकार कौरव वीरों के विरुद्ध योद्धा नियत किया-कर्ण के लिए अर्जुन, दुर्योधन के लिए भीम, शल्य के लिए धृष्टकेतु, कृपाचार्य के लिए उत्तमौजा, अश्वत्थामा के लिए नकुल, कृतवर्मा के लिए शैब्य, सैंधव के लिए युयुधान, भीष्म के लिए शिखण्डी, शकुनि के लिए सहदेव, वृषसेन के लिए अभिमन्यु, त्रिगर्त राजाओं के लिए उपपांडव और द्रोणाचार्य के लिए वह (धृष्टद्युम्न)स्वयं तैयार हुआ।

इस प्रकार कौरव सेनाओं के योद्धाओं के लिए अपनी सेना से प्रतियोद्धाओं का निर्णय करके धृष्टद्युम्न ने पांडव सेनाओं की व्यूह-रचना की। उसके विचार में अभिमन्यु अर्जुन की अपेक्षा अधिक प्रतिभाशाली योद्धा था।

उधर कौरव सेनाओं के नेता भीष्म ने दुर्योधन की माँग पर दोनों दलों के महावीरों की श्रेणियाँ इस प्रकार निर्धारित कीं—

कौरव सेना में कृतवर्मा, शल्य, सैंधव, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, द्रोण, बाह्लिक इत्यादि अतिरथी और उत्तम कोटिके वीर हैं। अश्वत्थामा अपने प्राणों के प्रति मोह रखता है, यह कमी न होती तो उसके समान वीर दोनों दलों में दूसरा न होता। वृषसेन तथा अलंबुस नामक राक्षस महारथी हैं। सुदक्षिण, नील, शकुनि, बिंद, अनुबिंद इत्यादि एकरथी हैं। कर्ण ने अपने कवच-कुण्डल खो दिये और शाप का शिकार हो गया, इसलिए उसे रथियों की सूची में जोड़ना संभव नहीं है। इस कारण वह अर्द्धरथी है।

पांडवों की सेना में पांचों पांडव अतिरथी हैं। उनमें अर्जुन उभय सेनाओं में असमान योद्धा है। उसका सामना करके लड़ने की शक्ति रखनेवाले केवल भीष्म तथा द्रोणाचार्य हैं, पर दोनों वयोवृद्ध हैं। अभिमन्यु, सात्यकी, उत्तमौजा, युधामन्यु, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, उसका भाई सत्यजित, घटोत्कच अतिरथी हैं। पांचों उपपांडव को महारथी मान सकते हैं। वैसे ही विराट, द्रुपद, शिशुपाल का पुत्र धृष्टकेतु इत्यादि महारथी हैं।

—क्रमशः

कथा न जाननेवाला

एक गाँव में एक खिलौने बनानेवाला रहता था। उसका नाम शिवराम था। वह मिट्टी के तरह-तरह के खिलौने बनाने में दक्ष था। उसके खिलौनों में सब तरह के पक्षी, पशु, मनुष्य और देवी-देवता होते थे। उसके खिलौने इतने सुन्दर और वास्तविक होते थे कि मानों अब बोल पड़ेंगे। पर्वों और त्योहारों पर वह उन्हें मेलों में बेचने जाता। अभी दशहरा दो महीने बाद आनेवाला था। इसके लिए उसने ढेर सारे खिलौने तैयार किये, उन पर अच्छे रंग लगाये। और जब दशहरा निकट आ गया तब वह एक टोकरे में उन्हें रखकर रास्ते के गाँवों में बेचने गया।

एक बार शिवराम गाँवों में से होकर कस्बा जा रहा था कि ऐसी जगह अन्धेरा हो गया, जहाँ न कोई बस्ती थी, न कोई गाँव ही। वह उस अन्धेरे में ही चलता गया। जब दूर उसने एक दीये की रोशनी देखी तब उसकी जान में जान आई।

यह दीया एक घर में जल रहा था। शिवराम जब घर के पास गया तो उसमें उसने एक बूढ़े को देखा। शिवराम ने उस बूढ़े से कहा,-"बाबा, हम बहुत दूर से आ रहे हैं। रास्ते में अन्धेरा हो गया। क्या सवेरे तक आप हमें टिका लेंगे?"

"इसमें कौन-सी बड़ी बात है? उस टोकरे को उस तरफ़ रख दो और यहाँ आकर बैठ जाओ। बातों बातों में मेरा समय भी कट जायेगा। मैं रसोई शुरू करने जा रहा हूँ। दोनों मिलकर खाना खायेंगे।"

शिवराम बड़ा खुश हुआ। बाबा अच्छा आदमी लगता है। वह किसी पेड़ के नीचे कीचड़ में सोने की बला से बच गया। यही नहीं, बाबा की मेहरबानी से उसे खाने को भी मिल जायेगा।

वह मन ही मन बाबा की तारीफ कर रहा था और अपने भाग्य पर इतरा रहा था।

बाबा रसोई घर में गया और जल्दी ही वापस चला आया। "मैंने रसोई करनी शुरू कर दी है, जल्दी ही हो जायेगी। कुछ गावो तो सुनें।" शिवराम

पच्चीस वर्ष पूर्व 'चन्दामामा' में प्रकाशित कहानी

के सामने बैठते हुए उसने कहा।

"मैं गाने वाने नहीं जानता।" शिवराम ने कहा।

"अरे...गाना भी नहीं जानते? तो कोई कहानी ही सुना दो।" बूढ़े ने कहा।

"मैं कहानी भी नहीं जानता बाबा।" शिवराम ने कहा।

बाबा इतने में क्रुद्ध हो उठा। "गाना नहीं आता, कहानी नहीं आती...तो मैं तुम्हें एक क्षण भी यहाँ नहीं रहने दूँगा। चलो बाहर।"

शिवराम चकरा-सा गया। बूढ़े का व्यवहार उसे बड़ा विचित्र-सा लगा। सोचने लगा कि अभी-अभी तो यह फरिश्ता जैसा लग रहा था और अब शैतान बन गया। वह अपने भाग्य पर रोने भी लगा कि यदि उसे गाना और कहानी सुनाना आता तो यह नौबत नहीं आती। पर अब क्या करता? वह अपना टोकरा लेकर बाहर निकल गया। उसने सोचा कि बाबा उसे फिर बुलायेगा, परन्तु उसने वैसा नहीं किया।

शिवराम और आगे जाना नहीं चाहता था, क्यों कि रात के अंधेरे में मार्ग भटकने का डर था। इसलिए जिस गाँव से वह आया था, वहीं किसी के यहाँ रात काटने का उसने निश्चय किया।

इसलिए वह टोकरा सिर पर रखकर पीछे चल पड़ा। जब वह थोड़ी दूर गया तो रास्ते के बगल में उसने किसी को चूल्हे पर कुछ पकाते देखा। अन्धेरे में उस व्यक्ति की शक्ल ठीक तरह नहीं दिखाई देती थी।

"क्या तुम ही हो शिवराम? ज़रा इस हंडे को इस करछी से घुमाते रहो, अभी आता हूँ।" उस

व्यक्ति ने कहा।

न मालूम वह कौन है? उसने उसको कैसे पहचाना, यह शिवराम नहीं जानता था। उसकी दी हुई करछी से वह हंडा हिलाने लगा। न मालूम वह क्या चीज़ थी, सारा हंडा उससे भरा था और खाने के लिए सिवाय उस व्यक्ति के कोई और न था। शिवराम ने सोचा कि शायद उसे भी कुछ खाने को मिल जायेगा।

करछी देकर जो व्यक्ति चला गया था, वह बहुत देर बाद भी वापस नहीं आया। "अरे...भाई..." शिवराम ने आवाज़ दी, पर कोई जवाब न आया।

"क्यों? क्या इधर-उधर देख रहे हो? करछी घुमाते क्यों नहीं हो?" चूल्हे के हंडे ने कहा।

शिवराम डर गया और करछी नीचे फेंककर

हर हाल में खुश!

एक बार एक गाँव में घूमते-घूमते साधुओं की एक टोली पहुँची। उन्होंने गाँव के किनारे डेरा डाल दिया। उनके साथ बीस दुधारू गायें थीं। वे उनकी सेवा करते और खूब दूध-दही-घी-खीर खाते और भगवान का भजन कीर्तन गाकर मस्त रहते।

गाँव के कुछ शरारती युवकों को साधुओं की यह मौज-मस्ती अच्छी नहीं लगी। उन्होंने उन्हें परेशान करने के ख्याल से एक रात उनकी सारी गायें गाँव में लाकर छिपा दीं। और सुबह दूर से छिप कर देखने लगे कि ये कैसे परेशान होते हैं।

सुबह जब साधुओं ने देखा कि गायें नहीं हैं तो वे बड़े खुश हुए। वे प्रसन्न होकर नाचने-गाने लगे और भगवान को धन्यवाद देने लगे, -"धन्य हो प्रभु! हम सब का झंझट दूर कर दिया। हम कल ही आप के दर्शन के लिए बदरीनाथ-केदारनाथ की यात्रापर निकल जायेंगे।"

युवकों ने सोचा कि ये शायद गायों से परेशान थे। यदि इन्हें और गायें दे दें तो ये और परेशान होंगे। यह सोच कर अगली रात उनकी गायों के साथ बीस और गायें बाँध आये।

लेकिन दूसरे दिन सवेरे उठ कर वे और नाचने-गाने लगे और भगवान को धन्यवाद देने लगे,-"धन्य हो प्रभु! तुम्हारी कृपा असीम है। दुगुनी लक्ष्मी दे दी। हम और दूध-घी खायेंगे और यहीं रह कर आप का भजन-कीर्तन करेंगे। आप की जैसी इच्छा।"

युवक यह देख कर हैरान और परेशान थे कि ये साधु हर हाल में खुश हैं।

खड़ा हो गया। उसे लगा, जैसे वह भूतों के हाथ आ गया हो।

"इतना घमंड?" यह कहती हुई करछी ज़मीन पर से उठी और उसके सिर पर जोर से मारने लगी।

शिवराम और भी डर गया। वह इतना डरा कि उसे अपने टोकरे का भी ख्याल न रहा और वह सिर पर पैर रखकर भागने लगा। करछी उसका पीछा करती, उसकी पीठ पर मार रही थी।

सौभाग्यवश शिवराम ने रास्ते में एक घर देखा, जिसके किवाड़ खुले हुए थे। अन्दर घुसकर उसने किवाड़ बन्द किये और पीछे की ओर देखा। वह उसी बूढ़े का घर था।

"क्या हुआ? क्यों यूँ घबराये हुए आये हो?" बूढ़े ने पूछा।

शिवराम ने, जो कुछ हुआ था, बूढ़े को बताया। बाबा सुनकर बड़ा खुश दिखाई दिया। "अगर यह कथा पहले सुना देते तो मैं तुम्हें बाहर ही न भेजता। रसोई हो गई है....आओ खाना खायें।" उसने कहा।

काठ का दीपक

उपाध्याय जी जनार्दन स्वामी के मन्दिर में पुजारी थे और विष्णु-प्रशस्ति मंत्रों का पाठ किया करते थे। भगवान की पूजा के लिए विशिष्ट नैवेद्य भी वे स्वयं बनाते थे और इसके लिए रसोई घर में जाकर चूल्हा भी स्वयं ही जलाते थे। अग्नि प्रज्वलित करने के लिए उन्होंने पुराने काठ के दीप के बदले शमी की लकड़ी का तख्ता बनवाया था और उसी में आग सुलगाने वाली तीली भी।

उपाध्याय जी प्रौढ़ ब्रह्मचारी थे। वे देवस्थान की धर्मशाला में ही रहते थे और वहीं की पाकशाला में भोजन करते थे।

उनके साथ बारह वर्ष का एक अनाथ बालक रहता था। वह अपाध्याय जी की, हर कार्य में सहायता करता और समय मिलने पर उनसे वेदमंत्र सीखता था।

एक बार उपाध्याय जी बीमार पड़ गये। उन्हें देखने के लिए एक वैद्य को बुलाया गया। वैद्य ने उपाध्याय जी की नाड़ी की परीक्षा करके बताया,- "कुछ विशेष बात नहीं है। दो दिनों के विश्राम से आप ठीक हो जायेंगे। सिर पर पानी न पड़े, इसका ध्यान रखियेगा।"

इसके बाद "फिर आऊँगा" कह कर वैद्य जाने लगे। इस पर उपाध्याय जी ने हँसते हुए कहा,- "वैद्य को और ऋणदाता को 'फिर आऊँगा' कह कर नहीं, बल्कि "जाता हूँ" कह कर प्रस्थान करना चाहिए।

वैद्य को उपाध्याय जी की बात बुरी लग गई। उसके अहं को चोट लगी और उसने अपमानित अनुभव किया। उन्होंने हँस कर व्यंग्य करते हुए कहा कि कहते हैं, सब को शकुन बतानेवाली छिपकली खुद सानी में गिर गई। सबकी रक्षा करनेवाले जर्नादन स्वामी के आप पुजारी हैं। आप मन्दिर से उन्हीं को क्यों नहीं बुला लेते। फिर मुझे 'फिर आऊँगा' कहने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

उपाध्याय जी वैद्य की व्यंग्य भरी बातों से दुखी होकर बोले,-"भगवान तो सर्वव्यापी हैं। वे सिर्फ मन्दिर में ही रहते हैं, यह समझना आप की भूल है। हमारा विश्वास है कि वे सर्वत्र उपस्थित हैं। इसलिए

नरहरि शास्त्री
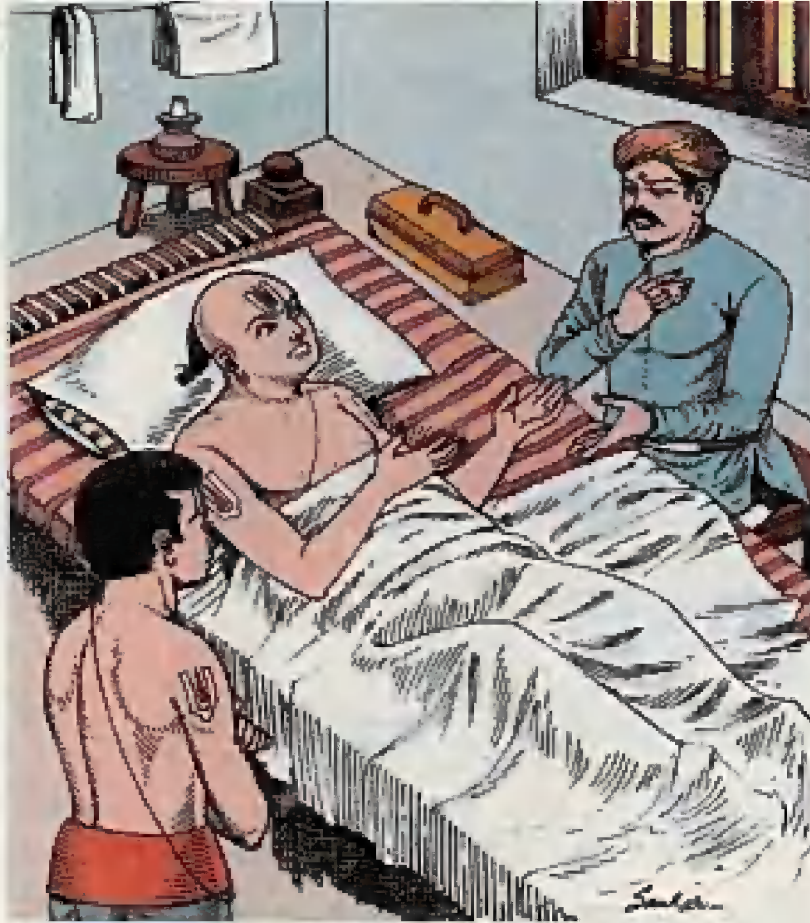
हम अपनी सुविधा के अनुसार किसी एक स्थान पर उनकी उपस्थिति को आकार दे देते हैं ताकि हम अपने दुख-सुख और पाप-पुण्य का लेखा-जोखा उनसे कर सकें। इससे हमें मन की शांति मिलती है। और जिसका विश्वास अटूट होता है, उसकी वे किसी न किसी रूप में अवश्य सहायता करते हैं।

वैद्य को उपाध्याय जी का यह उपदेश बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। उसके अहं पर चोट का दर्द अब भी था। इसलिए उसने पुनः व्यग्यं करते हुए कहा,- "आप का वेदान्त सुनने में अच्छा लगता है, लेकिन व्यावहारिक नहीं है। इससे न आप को भोजन मिलेगा, न मुझे। अच्छा, जाता हूँ।"

इतना कह कर वे तेजी से पीछे मुड़े और जाने लगे। तभी वे मन्दिर के एक स्तंभ से टकरा गये और गिर कर बेहोश हो गये। छिपकली के सानी में गिरने की कहावत उन्हीं पर घट गई। तब उपाध्याय जी ने बालक की सहायता से वैद्य की सेवा-शुश्रूषा की। वैद्य की चेतना पुनः लौट आई।

सचेत होने के बाद वैद्य ने विनयपूर्वक कहा,- "उपाध्याय जी, लगता है हर कार्य के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है। अब मुझे अनुभव हुआ कि सोने की थाली को भी सहारे की जरूरत होती है। वैद्य होते हुए भी मैं अपनी चिकित्सा स्वयं नहीं कर पाया। परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि आयुर्विद्या अनुपयोगी है।"

इस घटना के बाद उपाध्याय जी की ख्याति बढ़ गई। सब कहने लगे कि उपाध्याय जी बड़े चमत्कारी हैं। काठ के दीप से अग्नि प्रज्वलित करना सिर्फ़ उन्हीं से संभव है। और यदि कोई उनका अनादर करे तो जनार्दन स्वामी उसे दण्ड देते हैं।

इससे उपाध्याय जी के मन में अहंकार उत्पन्न हो गया। वे अपने को सचमुच ही महान मानने लगे।

इसी बीच एक दिन एक भारी आँधी-तूफान के कारण देवालय का ध्वज-स्तंभ गिर गया। गाँववालों ने यथाशक्ति चन्दा देकर धन एकत्र किया और ध्वज-स्तंभ को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए एक शुभ मुहूर्त निश्चित किया। मुहर्त्त में दस दिन शेष थे। तभी उपाध्याय जी को सूचना मिली कि दूर के एक गाँव में उनके एक निकट सम्बन्धी का निधन हो गया है। उस सम्बन्धी का उपाध्याय जी के सिवा कोई नहीं था। इसलिए उसके दाह-संस्कार का दायित्व इन्हीं के ऊपर आ पड़ा।

इधर दसवें दिन ध्वज-स्तम्भ की प्रतिष्ठा करनी थी जिसमें इन्हें काठ का दीप जलाना था, उधर उसी दिन अपने सम्बन्धी का श्राद्ध करना था।

फिर भी, उपाध्याय जी बालक को लेकर सम्बन्धी के गाँव में गये और दाह-संस्कार का रस्म पूरा किया। फिर बालक को दसवें दिन के श्राद्ध सम्बन्धी अनुष्ठान की क्रिया समझा कर दूसरे दिन अपने देवालय लौट आये। बालक ने उपाध्याय को वचन दिया कि दस दिनों तक वह उसी गाँव में रहेगा और ग्यारहवें दिन श्राद्ध का अनुष्ठान पूरा करके ही लौटेगा। उसने बड़ी सचाई से मृतक के पुत्र के समान अनुष्ठान पूरा किया और उपाध्याय के पास लौट आया।

उसी दिन आधी रात को ध्वज-स्तम्भ की प्रतिष्ठा का मुहूर्त्त था। सारे गाँव में उत्सव का वातावरण था। सारी तैयारियाँ हो चुकी थीं। ऋत्विजों ने यज्ञ-कुंड तैयार कर लिया था। काठ का दीप जला कर मंत्रोच्चार के साथ यज्ञ-कुंड को प्रज्वलित करना था।

तभी उपाध्याय ने अपने हाथ में काठ का दीप ले लिया और कहा-"स्थल पुराण बताता है कि नारद ने त्रेतायुग में इसका प्रतिष्ठापन किया था। देखिये, अपनी वीणा को झंकृत करते हुए वे आज भी यहाँ पधार रहे हैं। मैं जब अग्नि देव का आवाहन करूँगा तब ऋत्विजों के मंत्रोच्चार के साथ देवता भी प्रकट हो जायेंगे।" इतना कह कर इधर उपाध्याय दीप को रगड़ने लगे।

वैसे अन्य दिनों में वे बड़ी सुगमता से दीप जला लेते थे। किन्तु आज बहुत प्रयत्न के बाद भी
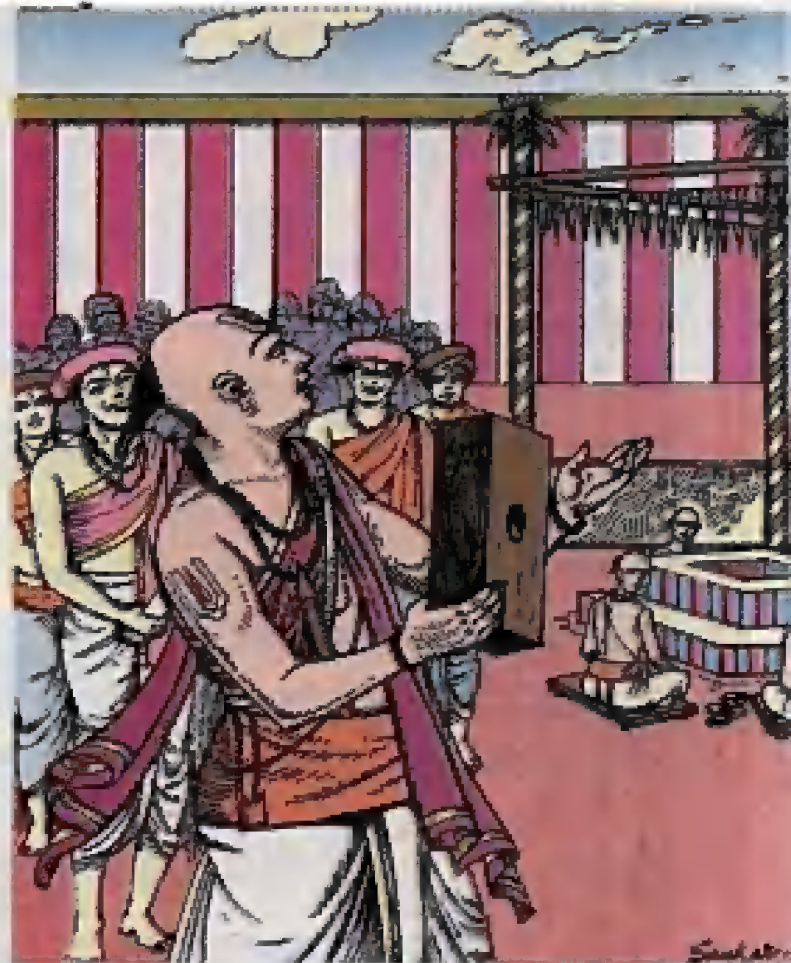
दीप नहीं जला। अन्त में थककर और निराश होकर वे वहाँ से हट गये।

उसके बाद वहाँ उपस्थित अन्य वेद पंडितों ने भी प्रयास किया किन्तु असफल रहे। गाँव में पुण्यात्मा माने जाने वाले व्यक्तियों से भी यह काम करवाया गया किन्तु व्यर्थ।

उपाध्याय की आँखों में आँसू आ गये। उनका हृदय वेदना से व्यथित हो उठा। उनकी आत्मा पुकार उठी,- "हे प्रभु! मुझसे क्या भूल हो गई? मुझे क्षमा कर दें। अपने सेवक को इस घोर अपमान से बचा लें भगवन!"

तभी बालक ने उनके सामने आकर प्रार्थना की,-'गुरुवर, क्या मैं प्रयास करूँ?'

"तुमने मेरे मृतक बंधु का श्राद्ध किया है, इसलिए एक वर्ष तक यज्ञ में भाग नहीं ले सकते।" उपाध्याय

ने यह कह कर बालक को काठ का दीप जलाने से मना कर दिया।

इस पर एक वेद पंडित ने कहा, -"बालक ने सच्चे ब्राह्मण का कार्य किया है। मृतक का संस्कार स्वयं एक यज्ञ है। इससे इसका पुण्य बढ़ा है।

उपाध्याय ने तब नम्रतापूर्वक कहा-"सचमुच, मैं तो भूल ही गया था कि मानव सेवा ही माधव सेवा है। प्रेत-संस्कार-कर्म कोटि यज्ञों के समान होता है। यह बालक धन्य है। मुझे गर्व था कि मैं ही काठ का दीप जला सकता हूँ। भगवान ने मेरी आँखें खोल दीं। यह बालक दीप जला सकता है।"

बालक ने पहले अपने गुरु उपाध्याय जी को प्रणाम किया। फिर अग्निदेव का आवाहन करते हुए कहा, -"मैं सदा गुरु की आज्ञा का पालन करता हूँ। गुरु भगवान के समान है। यदि यह बात सत्य है तो दीप से अग्नि प्रज्वलित हो जाये।" इन शब्दों को दुहराते हुए उसने दीप से तीली का घर्षण किया। अग्नि अकस्मात प्रज्वलित हो गई। सभी उपस्थित जनों तथा वेदपंडितों ने बालक की प्रशंसा की।

यज्ञ समाप्त होने के बाद वेदमंत्रों के साथ ध्वज-स्तम्भ की प्रतिष्ठापना हो गई।

दूसरे दिन जनार्दन स्वामी के लिए नैवेद्य तैयार करना था। उपाध्याय ने बालक को काठ का दीप जलाने के लिए बुलाया।

"मैं गुरु का स्थान नहीं ले सकता। प्रेत-संस्कार से कोटि यज्ञों का फल मिलता है, शायद यही सिद्ध करने के लिए भगवान ने मुझे वह अवसर दिया था।" यह कहते हुए बालक ने दीप जलाने से मना कर दिया।

तब उपाध्याय ने स्वयं मन ही मन भगवान से प्रार्थना करते हुए दीप जलाने का प्रयास किया। उन्हें आश्चर्य हुआ कि दीप से बड़ी सुगमतापूर्वक अग्नि प्रज्वलित हो गई। लेकिन अब उनके मन में तनिक भी गर्व नहीं था। उन्होंने कृतज्ञता में जनार्दन स्वामी के सामने अपना सिर झुका दिया।

कुछ दिनों के पश्चात बालक की नियुक्ति उपाध्याय के स्थान पर हुई और उसे बहुत ख्याति मिली।
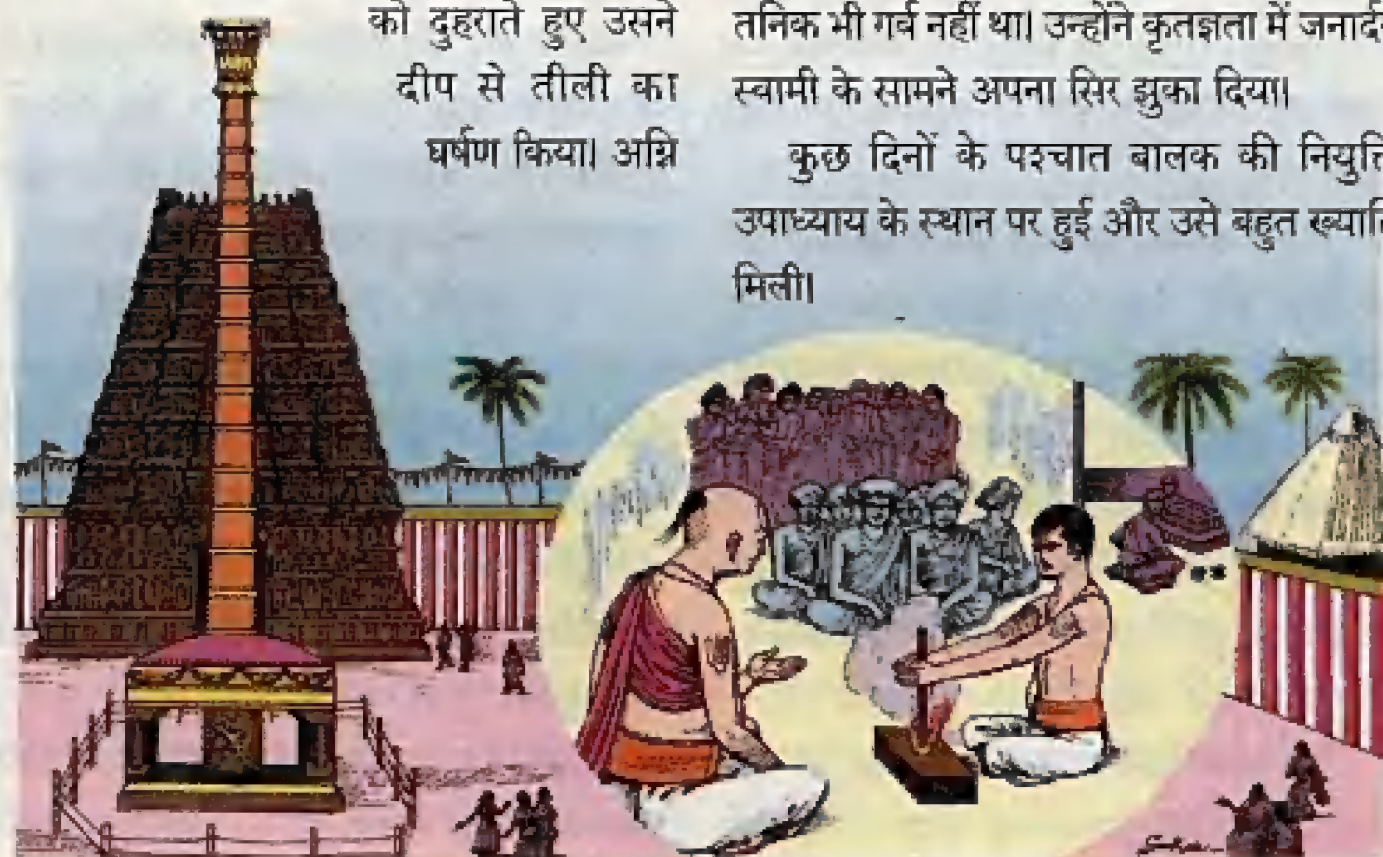
मन के छींटों के दाग

उस गाँव के सीमान्त पर झाड़ियों का एक वन था, जिसमें गाँव के मवेशी प्रायः चरने जाया करते थे। एक दिन वहाँ का एक किसान अपने बेटे के साथ, एक विवाह में सम्मिलित होने के लिए उस वन से गुजर रहा था।

एक नन्हीं-सी बकरी अपने झुण्ड से अलग होकर एक जलाशय में पानी पीने जा रही थी। जलाशय के किनारे की मिट्टी गीली थी और पानी काफी दूर था। बकरी ने जैसे ही जलाशय में प्रवेश किया कि उसके पाँव दलदल में फँस गये। जितना वह उससे निकलने का प्रयास करती, वह उतना ही धँस जाती। वह बहुत करुण स्वर में मिमिया रही थी।

किसान ने जब उसकी यह दुःस्थिति देखी तो उसे दया आ गई। उसने तुरन्त अपनी धोती कसी और दलदल में उतर गया। उसने नन्हीं बकरी को गोद में उठा लिया और किनारे लाकर सूखी जगह पर रख दिया। बकरी ने कीचड़ को झाड़ने के लिए अपने शरीर को जोर से झटका दिया। और दौड़ कर अपने झुण्ड में मिल गई। लेकिन वहीं पर खड़े किसान की धोती पर कीचड़ की छींटों के ढेर सारे धब्बे पड़ गये।

यह देख कर बेटे ने कहा, - "पिता जी! अनावश्यक ही आप बकरी को बचाने चले गये। और अपने कपड़े गन्दे कर लिये। क्या अब इन्हीं कपड़ों में शादी में जायेंगे?"

पिता ने मुस्कुराते हुए कहा, - "बेटे, कपड़ों पर लगे कीचड़ के धब्बे आसानी से साफ किये जा सकते हैं। किन्तु, सहायता करने की स्थिति में रहते हुए भी यदि मैं उसकी सहायता नहीं करता, तो मेरे मन पर पाप की छींटों के धब्बे पड़ जाते, जिन्हें साफ करना कभी संभव नहीं होता। ऐसी परीक्षा की घड़ी जीवन में कभी-कभी आती है, जो हमारी भावी नियति की निर्णायक होती है। मान लो, विपत्ति में फँसी बकरी को अनदेखा कर हम आगे बढ़ जाते और हम भी संयोगवश किसी दलदल में फँस जाते तो किस मुँह से भगवान को मदद के लिए पुकारते। याद रखो, परोपकार का एक छोटा काम भी मनुष्य को देवत्व की ओर ले जाता है।

खोज करो! अभिव्यक्त

इस अंक में प्रकाशित प्रश्नावली के उत्तर अगले अंक में दिये जायेंगे।
तब तक **'भारत की खोज प्रश्नोत्तरी, चन्दामामा बिल्डिंग्स,
वडापलानि, चेन्नई-६०० ०२६'** के पते पर अपने उत्तर भेजने के लिए
आप का स्वागत है।
किन्तु, इस प्रश्नोत्तरी-स्पर्द्धा में भाग लेने के लिए निम्नलिखित सर्जनात्मक कृति
अनिवार्य है:
चन्दामामा के मार्च 2000 अंक में प्रकाशित सभी उद्धरणों और पूरक वाक्यों को पढ़िए, जो
कई पृष्ठों पर उद्धृत हैं और यह बताइए कि उनमें से सबसे अधिक आप को कौन-सा अच्छा लगा और
क्यों। उद्धरण की पृष्ठ संख्या देते हुए लगभग सौ शब्दों में कारण बतायें। इसे अपने अध्यापक अथवा
अभिभावक द्वारा प्रमाणित करा कर अपना नाम तथा हस्ताक्षर, उम्र, कक्षा और विद्यालय (यदि छात्र हैं) तथा
अपना पूरा पता लिख कर उपरोक्त पते पर भेज दें।

प्रथम पुरस्कार : 1000 रु.
द्वितीय पुरस्कार : 500 रु.

तथा
पाँच बधाई पुरस्कार
प्रत्येक **200** रुपये

चन्द

भारत
प्रश्न

1 भारत की खोज प्रश्नोत्तरी :

अन्धेरी रात थी। सर्वत्र सन्नाटा था। पावन नदी के किनारे श्मशान घाट पर कुछ चिताएँ जल रही थीं।

एक रोती-बिलखती स्त्री अपने मृत बच्चे को छाती से लगाये अकेली श्मशान घाट पर पहुँची। श्मशान घाट पर अपने बच्चे के दाह-संस्कार के लिए उसे शुल्क देना जरूरी था। श्मशान घाट के मालिक की ओर से उसका पहरेदार शुल्क वसूलता था।

स्त्री के पास शुल्क के लिए मुद्रा नहीं थी। शुल्क के बिना पहरेदार ने दाह-संस्कार करने से मना कर दिया। अचानक पहरेदार ने स्त्री को पहचान लिया। वह और कोई नहीं, बल्कि उसकी पत्नी थी। मृत बालक उसी का पुत्र था।

पहरेदार कौन था? स्त्री कौन थी? श्मशान घाट कहाँ था?

2
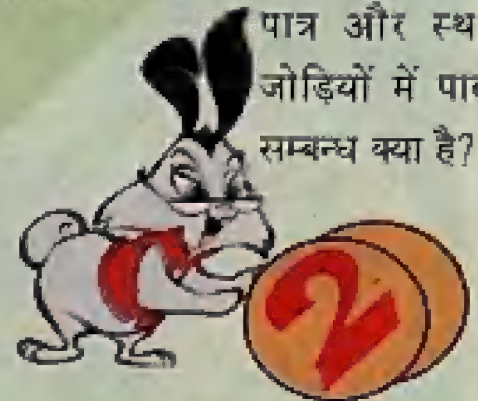
निम्नलिखित पौराणिक पात्र और स्थान की जोड़ियों में पारस्परिक सम्बन्ध क्या है?

चन्दामामा : भाषाएँ अनेक

करो और पुरस्कार लो!

मामा

१. समुद्र तटीय नगर पुम्पुहर की गरिमा का वर्णन करने वाली प्राचीन कृति कौन-सी है?

२. वह लेखक कौन है जिसके विषय में यह विश्वास किया जाता है कि उसने सुदूर अतीत में कहानियों का संग्रह करते हुए पूरे भारतवर्ष का भ्रमण किया था?

३. किस प्राचीन कृति में सावित्री और सत्यवान का आख्यान पाया जाता है?

४. तमिल और हिन्दी भाषा के वे दो कवि कौन हैं जिन्होंने रामायण को लोकप्रिय बनाया।

५. कौन प्राचीन भारतीय दार्शनिक प्रसिद्ध नास्तिक था?

शर्तें

१. चन्दामामा इंडिया लि. के कर्मचारी तथा उनके परिवार/सहयोगी इस स्पर्द्धा में भाग नहीं ले सकते।

२. निर्णायकों का निर्णय अन्तिम होगा और इस सम्बन्ध में कोई पत्राचार नहीं किया जायेगा।

३. अपठनीय प्रविष्टियों पर विचार नहीं किया जायेगा।

४. परिणामों की घोषणा चंदामामा के जुलाई 2000 अंक में की जायेगी।

५. उत्तर हमें 30 अप्रैल तक मिल जाने चाहिए।

अ.	कृष्ण	-	विदर्भ
ब.	बलभद्र	-	कुशस्थली
स.	नल	-	निषाध
द.	मार्कण्डेय	-	पुष्प भद्र तीर्थ
इ.	गुहा	-	शृंगीवर पुर

ज्ञान और आनन्द की भावना एक
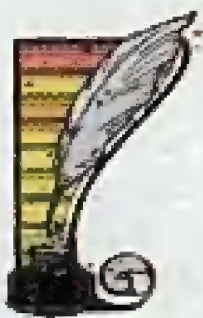
भारत

तब और अब

कलकत्ता

ब्रिटिश भारत की पहली राजधानी

कलकत्ता या कोलकाता? यह निश्चय किया गया कि कलकत्ता के स्थान पर नगर का नाम कोलकाता रखा जाये। किन्तु क्या इससे नगर के नाम के अर्थ में कोई परिवर्तन होता है? नहीं। क्योंकि कलकत्ता और कोलकाता में केवल उच्चारण में अन्तर है और उसका अर्थ आज तक रहस्यमय बना हुआ है।

सन् 1698 में 9 नवम्बर को जमीन्दार सबर्ण रॉय चौधरी ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को अपने तीन गाँव बेचे। ईस्ट इंडिया कम्पनी ब्रिटिश व्यापारियों का एक दल था जो भारत के साथ व्यापार करना चाहता था। वे तीन गाँव थे-काली घाट, सुटानाटी और गोविन्दपुर। कम्पनी की ओर से जिस व्यक्ति ने इन गाँवों को खरीदा था उसका नाम था जॉब चारनॉक। उन गाँवों के समूह का किसी प्रकार कलकत्ता नाम पड़ गया। यह नाम काली घाट से लिया गया होगा, क्योंकि यह तीनों गाँवों में वहाँ एक प्राचीन काली मन्दिर होने के कारण सर्वाधिक प्रमुख था।

चारनॉक नगर का संस्थापक माना जाता है। वह एक बार एक विधवा युवती को, जो अपने पति की चिता पर जिन्दा जलने जा रही थी, अपने साथ ले गया और उससे शादी कर ली। उसका मकबरा अभी भी वहाँ है।
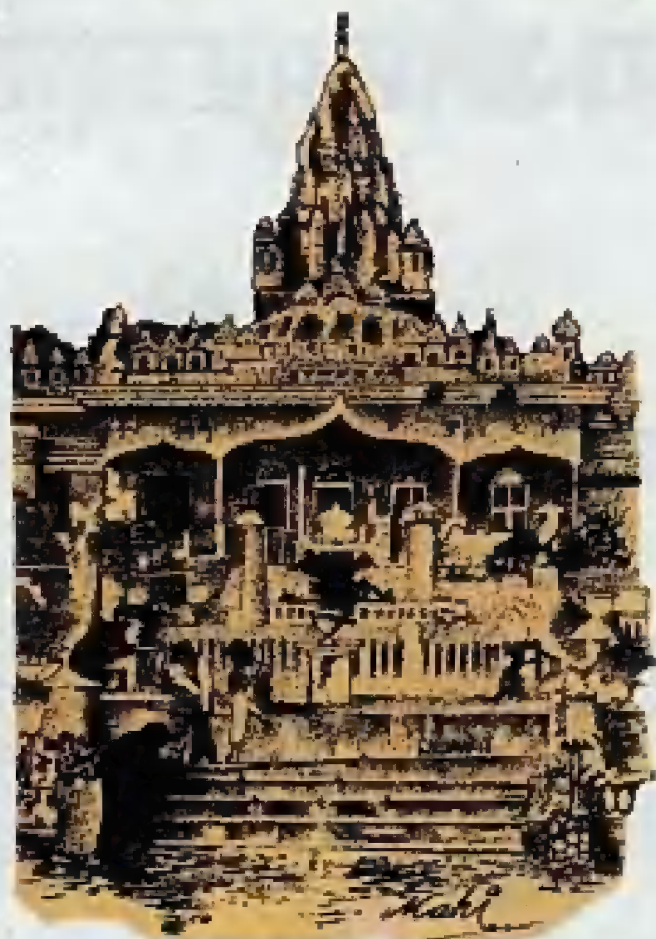
गंगा नदी के किनारे बसा हुआ, जिसे हुगली कहा जाता है, कलकत्ता का विकास एक नगर के रूप में बहुत तेजी से हुआ। रूडयार्ड किपलिंग ने इसे "संयोग-निर्देशित, संयोग-निर्मित नगर" कहा है। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने यहाँ एक किले का निर्माण करवाना शुरू किया जो सन् 1716 में पूरा हुआ। अगले वर्ष मुगल बादशाह द्वारा कम्पनी को बंगाल में व्यापार करने का अधिकार दे दिया गया। किला उनके व्यापार का केन्द्र था। यह किला फोर्ट विलियम के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

किन्तु, क्या व्यापारियों को क़िले की आवश्यकता पड़ती है? केवल शासकों को इसकी जरूरत पड़ती है। शीघ्र ही व्यापारियों की कम्पनी ने जमीन्दारी खरीदनी और नियमित लश्कर बहाल कर राज्यक्षेत्रों को जीतना शुरू कर दिया।

बंगाल के नवाब सिराजुदौला और कम्पनी के बीच बड़ा युद्ध छिड़ गया। नवाब ने कम्पनी की सेना को सन् 1756 में हरा कर कलकत्ता पर अधिकार कर लिया। किन्तु अगले ही वर्ष क्लाइव के नेतृत्व में कम्पनी की सेना ने नगर को फिर से जीत लिया। शीघ्र ही दोनों शक्तियों की पलासी के मैदान में एक दुर्दम्य संघर्ष में मुठभेड़ हो गई। सिराज इस युद्ध में हार गया और मार दिया गया। सन् 1772 तक कम्पनी ने एक महाराज्यपाल नियुक्त करने भर काफी राज्यक्षेत्रों को जीत लिया था। इस पद पर नियुक्त किये जानेवाले प्रथम व्यक्ति थे वारेन हेस्टिंग्स। उन्होंने फोर्ट विलियम से शासन चलाया। कम्पनी द्वारा भारत के अधिकांश हिस्सों को जीत लिये जाने के बाद भी कलकत्ता ब्रिटिश भारत की राजधानी बना रहा। सन् 1912 में भारत की राजधानी दिल्ली आ गई।

कलकत्ता पश्चिम बंगाल अथवा बंग की आज भी राजधानी बनी हुई है।

पुराने कलकत्ता की सबसे प्राचीन संस्था काली घाट का मन्दिर है। यहाँ की इष्ट देवी की उपासना तब से हो रही है जब यहाँ जंगल था। यहाँ अन्य प्रसिद्ध मन्दिर भी हैं, जैसे-सुन्दर जैन पूजास्थल, पारसनाथ, मदनमोहन का मन्दिर और शताब्दियों पुराने गिरजा घर जैसे अमरीकी गिरजाघर, सेंट पॉल कैथेडरल, इत्यादि। अन्य स्मारकों और संस्थाओं में हैं-शहीद मीनार, विक्टोरिया स्मारक, अजायबघर, कवि रवीन्द्रनाथ का जन्म-स्थान इत्यादि। इसके अतिरिक्त यहाँ अनेक विश्वविद्यालय तथा कला और संस्कृति के केन्द्र हैं। यह एक मात्र नगर है जहाँ विद्युतचालित ट्राम चलाये जाते हैं। भारत का पहला कृत्रिम नभोमण्डल भी सन् 1962 में यहीं स्थापित किया गया था। सन् 1997 में कलकत्ता को प्रथम विज्ञान नगर की उपाधि मिली।

कलकत्ता जिला की, जो मुख्य नगर से बना है, आबादी ४४ लाख से ऊपर है। हावड़ा की, जो कलकत्ता का जुड़वाँ शहर है, आबादी ३८ लाख से ऊपर है। चौबीस परगना जिले का एक भाग भी प्रायः बृहत् कलकत्ता का अंग माना जाता है।

विश्व पुस्तक मेला

आधुनिक संसार नाटकीय घटनाओं से भरा है। कहीं युद्ध हो रहा है तो कहीं सैनिक विद्रोह में सरकारें पलटी जा रही हैं। हत्या और अपहरण रोज की खबरें हैं। इनके अतिरिक्त राजनीतिक उथल-पुथल, प्राकृतिक प्रकोप और दुर्घटनाएँ भी इनमें शामिल हैं।

किन्तु हमारा पंचांग केवल उपद्रवों से ही अंकित नहीं रहता। उनमें अन्य कोटि की महान घटनाएँ भी होती हैं जो उपयोगी और सर्जनात्मक होती हैं। वे भी बहुतों के जीवन को परिवर्तित या प्रभावित करती हैं, किन्तु चुपचाप, बिना किसी शोरगुल के।

वे शान्त और नीरव होते हुए भी हमारे मानस-पटल पर अमिट छाप छोड़ जाती हैं।

ऐसी ही एक घटना थी - विश्व पुस्तक मेला, जो नयी दिल्ली में 5 फरवरी से 13 फरवरी तक आयोजित की गई थी। बृहत् मेलों एवं प्रदर्शनियों के लिए आरक्षित विशाल क्षेत्र - प्रगति मैदान इसका स्थल था। प्रधान मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने इसका उद्घाटन किया और हमारे मानव संसाधन विकास मंत्री श्री मुरली मनोहर जोशी ने इस अवसर पर सम्बोधित किया। नयी सहस्राब्दी की यह पहली महत्वपूर्ण घटना भारत में विश्व पुस्तक मेलों की कड़ी में चौदहवाँ थी। सन् 1972 में आयोजित प्रथम विश्व पुस्तक मेला में 224 भारतीय तथा विदेशी प्रकाशकों एवं पुस्तक विक्रेताओं ने भाग लिया था, जबकि पिछले मेले में भाग लेनेवालों की संख्या 1200 थी, जिन्होंने 29000 वर्ग मीटर क्षेत्र में फैले 9 मण्डपों में अपनी पुस्तकें प्रदर्शित कीं।

महत्वपूर्ण बात यह है कि इस वर्ष के मेले का विषय था - बाल साहित्य। भारत और विदेश से प्रकाशित बाल साहित्य की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकें एक मंडप-विशेष में सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रदर्शित की गई थीं। हजारों बच्चे इन्हें देख कर गद्गद् हो गये और उनके अभिभावकों ने भी अनुभव किया कि पुस्तकों के द्वारा बच्चों को कितना कुछ ज्ञान और आनन्द दिया जा सकता है।

इस अवसर पर कुछ अद्‌भुत प्रदर्शित किया गया था - विश्व का सबसे लम्बा समाचार पत्र (या पत्रिका) जो पूरा का पूरा बच्चों के द्वारा लिखा गया था। भारत के सभी राज्यों के बच्चों द्वारा लिखित गद्य और काव्य और उनके द्वारा बनाये गये चित्र इस भित्ति पत्रिका के रूप में टेढ़े-तिरछे, मेले के एक बहुत बड़े भाग में फैले हुए थे।

इस अवसर पर बाल-साहित्य के राष्ट्रीय केन्द्र (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की एक शाखा) ने बाल साहित्य की समस्याओं पर एक सेमिनार का भी आयोजन किया, जिसमें बहुत से प्रतिष्ठित लेखकों, सम्पादकों, शिक्षकों, चित्रकारों और बिदेशी प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसके उद्‌घाटन समारोह के मुख्य अतिथि थे बाल साहित्य के प्रख्यात लेखक रस्किन बांड जबकि मूल-भाव-अभिभाषण एक अन्य लब्धप्रतिष्ठ बाल कथाकार प्रोफेसर मनोज दास द्वारा दिया गया। यह संयोग की बात है कि दोनों ही तुम्हारी पत्रिका के सम्पादकीय सलाहकार हैं।

तुम्हें यह जान कर खुशी होगी कि तुम्हारी पत्रिका 'चन्दामामा' ने भी वहाँ अपना स्टॉल लगाया था। तुम्हें अवश्य ज्ञात होगा कि 'चन्दामामा' अंग्रेजी और संस्कृत मिला कर बारह भाषाओं में उपलब्ध है। यह विश्व की एक मात्र बाल पत्रिका है जो इतनी सारी भाषाओं के बच्चों तक अपने शाश्वत मानवमूल्यों से भरपूर ज्ञान और मनोरंजन का सन्देश लेकर प्रति मास पहुँचती है। चन्दामामा के बारह भाषाओं में प्रदर्शन ने, जो प्रकाशन की दुनिया में एक अनोखी बात है, दर्शकों को बहुत प्रभावित किया। चिपैंजी और डॉगी जैसे जीवित और प्रभावोत्पादक पात्रों पर बच्चे मानों मंत्रमुग्ध थे।

टेलिविज़न और इंटरनेट द्वारा लोगों के पठन-पाठन का अधिकांश समय ले लिये जाने के बावजूद, पुस्तकें आज भी ज्ञान, प्रज्ञा और आनन्द प्राप्त करने का सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम बनी हुई हैं। तुम सब इस लोकप्रिय लोकोक्ति से परिचित हो कि 'मनुष्य की पहचान उसकी संगति से होती है।' एक अमरीकी लेखक ने इसमें थोड़ा सुधार कर दिया है - 'मनुष्य की पहचान उसके मन की संगति से होती है।'

एक अच्छी पुस्तक ही हमारे मन के लिए अच्छी संगति हो सकती है।

इन पुस्तक-मेलों का आयोजन ऐसे छात्रों और अभिभावकों को एक स्वर्ण अवसर प्रदान करता है जिन्हें ज्ञान बर्धन और आत्म बिकास के लिए एक छत के नीचे विश्व भर के सभी विषयों पर अद्यतन प्रकाशित सामग्री मिल जाती है। साथ ही नित्य नये ज्ञान-विज्ञान के खुलते हुए आयामों की जानकारी भी मिल जाती है।

चित्र
कैप्शन प्रतियोगिता

क्या तुम कुछ शब्दों में ऐसा चित्र परिचय बना सकते हो, जो एक दूसरे से संबंधित चित्रों के अनुकूल हो? तुम एक सामान्य पोस्टकार्ड पर इसे लिख कर इस पते पर भेज सकते हो:

चित्र परिचय
प्रतियोगिता
चन्दामामा
वडपलनि
चेन्नै -६०० ०२६

जो हमारे पास इस माह की २५ तारीख तक पहुंच जाए। सर्वश्रेष्ठ चित्र परिचय पर १००/- रुपये का पुरस्कार दिया जाएगा, जिसका प्रकाशन अगले अंक के बाद के अंक में किया जाएगा।

ब धा इ यां

फरवरी अंक के पुरस्कार विजेता हैं :

कु.आकांक्षा

C/o रूपेन्द्र कुमार साव, रूपांकन,
मुक्त नगर, कसारीडीह, दुर्ग-491003 (म.प्र.)

विजयी प्रविष्टि :

"देख राजा की सवारी-खिलखिलाए गुड़िया प्यारी"

रसना पीओ, प्रैंकी पाओ !
FREE!
PRANKIES
FUN CREATURES. FUN ERASERS.
30 से भी ज़्यादा प्रैंकीज़
फ्री ! *
* एक प्रैंकी पाइए हर 32 ग्लास
रसना सॉफ़्ट ड्रिंक कॉन्सन्ट्रेट पैक में.
Packs also available without this offer. Offer valid till stocks last.
Rasna
ORANGE
Mudra:RASNA:99/473 ORI